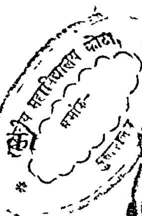
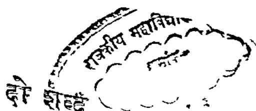
समर्पित

माया को



कृष्णकान्त त्रिपाठी



दो शब्द

अन्त मे, मैं साहित्य निकेतन कानपुर के अध्यक्ष सहृदय रामनारायण कपूर का हृदय से धन्यवाद दूंगा, जिनके स्नेह के कारण स्तुत कृति पाठकों के हाथ में पहुंच सकेगी।

कृष्णकान्त त्रिपाठी
सनातनधर्म कालेज
कानपुर

रावली, १९६३

अनुक्रम

37285

प्रथम अध्याय

यदीयकारुण्यकटाक्षलेशं लब्ध्वा हसन्तीव जना सुरेशम्।
अघातिघातिप्रथमप्रवेशं तं कामदशं शरणं भजाम ॥

१ संस्कृत साहित्य मे भवभूति --

संस्कृत भाषा और साहित्य हमारे आर्य देश की वह सम्पदा है, जिसके बल पर हम संसार को समस्त सभ्य जातियो के समक्ष उन्नत मस्तक होकर खड़े हो सकते हैं। जिस संस्कृत साहित्य के शाश्वत ग्रन्थ-रत्न वेद आर्य जाति के इतिहास मे प्राप्त प्राचीनतम लेख हैं,[1] वे आर्य जाति के वैभव के ज्वलन्त स्मारक हैं, इसमे दो मत नहीं हो सकते। महाकवि गेटे जिस समय संस्कृत साहित्य की एक कृति शकुन्तला को पढते हैं, हर्ष विह्वल हो नृत्य करने लगते हैं। महान् विचारक शापेन-हावर जब इस संस्कृत साहित्य के रत्नो (उपनिषदों) के जगमगाते प्रकाश से अपने हृदय को आलोकित पाते हैं, तब दृढ विश्वास के साथ कह उठते हैं कि ये मुझे मृत्यु के पश्चात् भी शान्ति देंगे। डा० मैक्समूलर और डा० मैक्डानल जिस साहित्य के निर्माताओ के प्रति विनम्र श्रद्धा-ञ्जलियां समर्पित करते हुए श्रमित नहीं होते और अपने को भाग्यवान कहते हैं, उसी साहित्य के विषय मे—उसी सुरभारती के विषय मे—जिसे आर्य श्रद्धा के कारण देवभाषा कहते थे, हम यहाँ विचार करने की धृष्टता अपनी मन्दमति के बल पर करने बैठे हैं।

---

१ जे० ए० १९१०–१२, १८४ पृ०

ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब कि आर्य यूरोप से ईरान, एशिया मा
और उत्तरी पश्चिमी भारत आवासित था, उस समय की प्राची
भाषा हमारी भारतीय और ईरानी भाषाओं की मूलमाता
आर्य भाषा का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है, जो मूल प्राय भा
अत्यधिक निकट का है। यह ग्रन्थ वैदिक संस्कृत मे है जिसे छन्दस
कहते थे। ऋग्वेद की संस्कृत से लौकिक संस्कृत तक, विकास के
चिन्ह दृढ़ता और स्पष्टता के साथ दिखाये जा सकते हैं। वै
संस्कृत का नियम शैथिल्य लौकिक संस्कृत में कठोर और व्यवस्थि
गया है।

विकास की प्रगति, परंपरा और व्याकरण के नियमों से बद्ध
पर भी नैसर्गिक रही है। जिसके परिणाम स्वरूप संस्कृत भाषा
भारत के प्राचीन दक्षिणी और पूर्वी भागों के निवासियों के सम
में, आर्यों के आने से, उनकी भाषाओं का प्रभाव बहुत दूर
पड़ा है।[1]

इस उथल पुथल में जो सैकड़ों वर्षों तक चलती रही, कुछ
स्मृति पथ से बिछुड़ गये और कुछ नए शब्द मिल गये। क्योंकि भ
और साहित्य लेखन सामग्री के अभाव में मौखिक स्मरणों पर
आश्रित थे। विदेशी भाषाओं ने भी सुरभारती के चरणों पर सु
भेंटें—शब्दों के रूप में—समर्पित कीं। किन्तु प्रचंड वैयाकरणों के प्र
के कारण यह व्यापार अगण्य ही रहा। प्रो० ल्यूडर के अनुसार पाणि
(५०० ई० पू०) ने निर्झर के समान नैसर्गिक प्रगतिशील संस्कृत भा
को नियमों से बद्ध कर लौकिक रूप में संकुचित कर दिया।

लेखन कला, अभिव्यंजना प्रणाली और प्रगति की पद्धति के
रूप परिवर्तित होते रहे हैं। लौकिक संस्कृत के प्रथम प्रभाव पूर्ण प्र

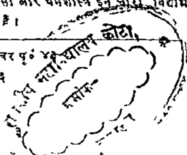
१ द पीटर्सन्—जे० ए० आ० एस० ३२, ४१४–२८ पृ०

का स्मारकरत्न वाल्मीकि रामायण है, जो विश्व साहित्य की अमर निधि है। हम महाकवि को आदि कवि के रूप में सदैव श्रद्धा समर्पित करते रहे हैं। डा० कीथ इनका समय ४०० ई० पूर्व कहते हैं।[1] डा० हार्नेल और ग्रियार्सन को यह भ्रम हो गया था, कि पाणिनि की भाषा वैदिक भाषा के उत्तर कालीन युग की भाषा की छाया थी, और लौकिक संस्कृत तो पाली के विरोध में कृत्रिम उपज है।[2] किन्तु यह भ्रम अब किसी को नहीं है।

संस्कृत, ज्ञान–विज्ञान दोनों की भाषा रही है। संस्कृत भाषा के विकास में ब्राह्मणों का बड़ा हाथ रहा है, जिसके कारण पाश्चात्य आलोचक इस भाषा को ब्राह्मणधर्म और ब्राह्मण संस्कृति की भाषा कह देते हैं। यह उनके ज्ञान की कमी है। बौद्ध और जैन संस्कृत साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। हाँ, संस्कृत भाषा और साहित्य की समृद्धि का श्रेय कुछ दूर तक ब्राह्मणों को उनके अथक परिश्रम और त्याग को दिया जा सकता है।

साहित्य, शब्द और अर्थ के मञ्जुल सामञ्जस्य का नाम "सहितस्य भावः साहित्यम्" व्युत्पत्ति भी यही बात कहती है। महाकवि और महान् वैयाकरण भर्तृहरि ने "साहित्य संगीत कला विहीनः" में साहित्य शब्द का प्रयोग–शब्द और अर्थ के अनुरूप सन्निवेश वाले काव्यों के अभिप्राय में किया है। कविराज राजशेखर भी–"पञ्चमी साहित्य विद्येति यायावरीयः साहित्यसूर्णा विद्यानामपि निष्यन्दः।"[3]

अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र इन चारों विद्याओं का सार साहित्य विद्या को कहते हैं।



---

१ हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ४६
२ बिहारी डिक्शनरी पृ० ३३
३ काव्य मीमांसा पृ० ४

२ साहित्य में नाट्य का स्थान :—

नाट्य शब्द जो रूपक का वाची है, सर्वप्रथम भरत के नाट्य शास्त्र में शीर्ष स्थान प्राप्त करता है। भरत नाट्य शास्त्र को कलाओं का 'विश्वकोष' कहा जाता है। ललित कलाओं में काव्य कला और विद्याओं में साहित्य विद्या अन्यतम पदभागी हैं। ब्रह्मानन्द सहोदर रसानुभूति काव्य के सरस, सरल और सहज माध्यम से ही सर्वदा होती रही है। काव्य के अनिर्वचनीय आनन्द की सत्ता सभी पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वान् स्वीकार करते हैं। प्राचीन युग के ऋषि "रसार्वै स" जिस रस की उपमा ब्रह्म से देते थे, उस साहित्यिक जगत् के मनोवैज्ञानिक रूप वाले रस की अनुभूति प्राचीन साहित्यशास्त्री— जिसकी अनुभूति परंपरा आचार्य भरत ने; विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पत्तिः' से व्यक्त की है—दृश्य काव्य तक ही सीमित मानते थे। एक युग था, जब कि अलंकार श्रव्य काव्य की और रस दृश्य काव्य की आत्मा माने जाते थे। समय के साथ रस की सत्ता का साम्राज्य काव्य जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में हो गया और आज काव्य की आत्मा के रूप में रस सिद्धान्त सभी को स्वीकार है।

वस्तुतः, रस की सहज अनुभूति जितनी दृश्य काव्य के घर की वस्तु है, उतनी श्रव्य काव्य के नहीं। यही कारण है, जिससे काव्य जगत् में नाटक को सर्व श्रेष्ठ स्थान दिया गया है।

कवि बिल्हण ने अपने 'विक्रमाङ्क देव चरित' में काव्य रूपी अमृत को साहित्य समुद्र के मन्थन से उत्पन्न होने वाला कहा है :—

"साहित्य पाथो निधिमन्थनोत्थं काव्यामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।"

साहित्य में काव्य और काव्य में नाटक को मनोज्ञता की दृष्टि से परम पद प्राचीन सहृदयों ने प्रदान कर दिया था—

"काव्येषु नाटकं रम्यम्।"

संस्कृत साहित्य ने तो यथार्थतः अपने "शाकुन्तलम्" ऐसे उच्चकोटि के नाटक के बल पर ही विश्व मे ख्याति प्राप्त की है। जैसे गीताजलि के बल रवीन्द्र ने। काव्य में नाटक की प्रतिष्ठा सर्वोच्च सभी को सदा स्वीकृत रही है। महाकवि कालिदास का भी कहना है :—

"त्रैगुण्योद्भवमत्र लोक चरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्न रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ॥"+

काव्य के श्रवण की अपेक्षा रगमच का आकर्षण अधिक होता ही है। काव्य के आनन्द की अनुभूति में मनुष्य भी नाटक के मनोज्ञ अभिनय को देखकर रससिक्त हो जाते है। आचार्य वामन का कहना है :—

"सन्दर्भेषु रूपकं श्रेय.। तद्धि चित्रं
चित्रपटवत् विशेष साकल्यात् —"१

लोकवृत्त का अनुकरण नाटक होता है। आचार्य भरत ने अपने नाट्यवेद को सार्ववर्णिक कहा है। इसमे तीनो लोको के भावों का अनुकीर्तन रहता है।

"त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानु कीर्तनम्।
नाना भावोपसम्पन्नं नाना वस्थान्तरात्मकम् ॥
लोक वृत्तानुकरणं नाट्य मेतन्मयाकृतम्।"२

आगे आचार्य भरत कहते हैं :—

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला—
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥"३

ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नही है, जो इस नाट्य मे न दिखाई देता हो।

+ मालविकाग्निमित्र १/४

१–काव्यालंकार सूत्र १/३/३०–३१ २– नाट्यशास्त्र १/१०८–९

३–नाट्यशास्त्र १/११४

इसउपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट ही हो चुका है, कि नाटक मे गद्य और पद्य दानों का आनन्द प्राप्त हो जाता है। विश्व के प्रत्येक साहित्य मे नाटकों को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त है। शेक्सपियर अपने नाटकों के ही कारण आंग्ल साहित्य मे मूर्धन्य हैं। अन्त मे हम प्राचीन आलंकारिकों की उक्ति को उद्धृत करने का लोभ नही संवरण कर सकते :—

'नाटकान्तं कवित्वम्"

३ साहित्य में रूपकों की उत्पत्ति:—

किसी भी भाषा और साहित्य तथा उसके अंगो और उपांगों के जन्म की निश्चित तिथि को निर्धारित कर देना सदैव बहुत कठिन कार्य रहा है। क्योंकि साहित्य एक सतत प्रस्रवणशील स्रोत होता है। उसके वास्तविक आरम्भ का दिन नहीं निर्धारित किया जा सकता है। किन्तु फिर भी, एक युग के लम्बे क्षेत्र मे जन्म और समाप्ति की वाह्य रूप रेखाएँ पहिचानने का प्रयत्न किया ही जाता है।

सर्व प्रथम नाट्य शब्द आचार्य भरत मुनि के नाट्य शास्त्र मे प्राप्त होता है। पाणिनि ने "पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयो" सूत्र मे नट शब्द का प्रयोग किया है। नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों के विविध विचार हैं। रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति 'नाट्' धातु से मानी है। 'नाट्य सर्वस्वदीपिका'[1] मे मूल धातु 'नट' स्वीकार की गई है। डा० वेबर ने नाट्य सर्वस्वदीपिका के मत को स्वीकार करते हुए भी, कुछ संशोधन करते हुए कहा है कि नट धातु नृत धातु का प्राकृत रूप है। कुछ विद्वानो की धारणा है कि मूल धातु नृत ही है, उसे नट आदेश हो जाता है। विद्वान मन्कद ने अपने 'टाइप्स अ फ संस्कृत ड्रामा' नामक ग्रन्थ में वेबर के मत का

१—नाट्य दर्पण पृ० २८।

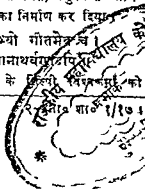
खण्डन करते हुए लिखा है कि प्राकृत साहित्य में नृत धातु को नट रूप कहीं भी नहीं मिलता है। साधारणतः अभिनयार्थक नट धातु से नाट्य, नाटक आदि रूप बनेंगे।

नाटक की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में विविध मत हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वान यूनान को नाटकों का आदिम घर मानते हैं। शेष पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् भारतवर्ष को नाटकों का आदि उद्भावक स्वीकार करते हैं। भारतीय प्राचीन परम्परानुसार नाट्यवेद की सृष्टि ब्रह्मा जी ने की थी। तथा उसका प्रचार भरत मुनि ने धरातल में किया। वैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति के अनुसार भी संस्कृत साहित्य में नाटकों का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन है और उसका आदि स्रोत भारत भूमि ही है।

रूपकों की उत्पत्ति की भारतीय परम्परा—भरत मुनि प्रणीत 'नाट्य शास्त्र' नाटशास्त्र (ड्रामेटर्जी) के ऊपर प्राचीनतम लेख कहा जाता है।[1] इसे सार्ववर्णिक पंचम वेद की संज्ञा दी गई है। नाट्यवेद में रूपकों की उत्पत्ति की दैविक परंपरा का वर्णन है। भरत मुनि का कहना है कि सत्ययुग में अभिनय का स्थान तथा त्रेता युग में एक विशेष आनन्द की आवश्यकता का अनुभव कर, सभी देवता मिलकर ब्रह्मा जी के पास गये और उनसे प्रार्थना के रूप में निवेदन किया कि किसी ऐसी वस्तु का निर्माण कीजिए जो आंख और कान दोनों को समान आनन्दप्रद हो जिससे सभी वर्ग आनन्द ले सकें। ब्रह्मा जी ने अनुग्रह करते हुए ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीति, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद का निर्माण कर दिया—

"जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥"[2]

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा को



१—नाट्य शास्त्र १/२।
२—ना० शा० १/१७।

प्रेक्षागृह निर्माण करने की आज्ञा दे दी। अभिनय के संकेत ब्रह्मा जी ने भरत मुनि को प्रदान कर दिए। इस नई सृष्टि से प्रसन्न देवों ने यथानुकूल—शिव ने ताण्डव नृत्य, पार्वती लास्य नृत्य और विष्णु ने अभिनय के चार प्रकार—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक प्रदान किए। अप्सराओं की भी उत्पत्ति कैशिकी वृत्ति के अभिनयार्थ हुई और भरत एवं उनके पुत्र पृथ्वी लोक में अभिनय के लिए निर्वाचित हुए। क्योंकि अभिनय कला देवों के वश की नहीं मानवों के वश की समझी गई भरत के नाट्य शास्त्र का उल्लेख महाकाव्यों में भी पांचवें वेद के रूप में है।[1] सर्व प्रथम इन्द्रध्वज महोत्सव में अभिनय हुआ। अभिनय में देवों की दानवों पर विजय दिखाई गई।

वैदिक संवाद —नाट्य का ऋग्वेद से ग्रहण किया जाना सार्थक सिद्ध हो गया है। ऋग्वेद में कई ऐसे संवाद स्थल हैं, जिन्हें विद्वानों ने ढूंढ निकाला है, उन्हें हम अपने नाटकों के मूल रूप कह सकते हैं। इससे भारतीय परंपरा प्रमाणित होती है। प्राय, पन्द्रह संवाद स्थल विशेष प्रसिद्ध हैं। "प्रथम—१०/१० में यम-यमी, द्वितीय—१०/९५ पुरूरवा-उर्वशी, तृतीय—८/१०० नेम-भार्गव और इन्द्र का, चतुर्थ—अगस्त्य, लोपामुद्रा और उनके पुत्र १/१७६, इन्द्र और वासुक्र ८/२८ पंचम, षष्ट—इन्द्र, अदिति और वामदेव ४/१८, सप्तम—इन्द्र-इन्द्राणी और वृषाकपि १०/८६, अष्टम—सरमा और पणि १०/१०८, नवम—विश्वामित्र और नदियां ३/३३, दशम—वशिष्ठ और उनके पुत्र ७/३३, एकादशम—इन्द्र और मरुत १/१६५" आदि।

ये सभी संवाद बड़े ही नाटकीय हैं। इन संवादों के मौलिक उद्भव और उद्देश्य के बारे में कोई स्पष्ट विचारधारा का ज्ञान नहीं

१—हापकिन्स दि ग्रेट एपिक आफ इण्डिया' पृ० ७/१०/१३।

है। १८६ ९ म प्रो० मैक्समूलर ने लिखा था, कि "यह सवाद (१/१६५) मरुन के प्रति आदर मे यज्ञ के अवसर पर कहा जाता था।"[1]

प्रो० लेवी का भी कहना है कि" सामवेद से सिद्ध होता है कि वैदिक युग म संगीत विद्या पूर्ण रूप से विकसित थी।[2] अथर्ववेद १२/१/४१ म स्पष्ट स केत करता है कि आदमी को कैसे नाचना, गाना और बजाना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक युग मे नाटक के सभी उपकरण वर्तमान थे। पुरोहित लोग देव और ऋषियो का स्थान लेकर स्वर्गीय घटनाओ का पृथ्वी पर अनुकरण करते थे।[3] किन्तु प्रो० वानश्रादर न त किर ढग पर कहा है, कि १०/११९ के ऋग्वेदीय सवाद क बल पर हम कह सकते हैं कि ऋग्वेदकाल में नृत्य नही था।[4] हाँ ब्राह्मण युग म यज्ञीय शुभावसरो पर प्राकृतिक घटनाओ का अभिनय नृत्य क आश्रय से किया जाता था। डा० हर्टेल[5] का कहना है कि वैदिक सूक्त सदा गाए जाते रहे हैं। एक व्यक्ति कई व्यक्तियो के स्थान पर नही गा सकता। फलत कई व्यक्ति गाया करते थे। ऋचाए[6] प्रथमत. गीतगोविन्द के समान नाट्यकला के क्षेत्र मे प्रविष्ट हुई। जिसका प्रमाण सुपर्णाध्याय है और जिनका रूप धार्मिक यात्राओ मे आभासित होता है।

किन्तु इन तथ्यो का कोई प्रामाणिक आधार नही है। ऋग्वेद स्तुति परक ग्रन्थ है और उसका यज्ञों मे धार्मिक रूप से व्यवहार होता रहा है।

इन सवाद सूक्तो के उद्देश्य के बारे मे प्रो० विन्डिश, डा० ओल्डेन बर्ग और डा० पिशेल आदि का कहना है कि यह सवादात्मक सूक्त पूर्णत नाटकीय हैं और नाटकों मे गद्य पद्य मिश्रण इनका अर्वाचीन

१—एस० बी० ई०, ३२।

२—टी० आई० १/३०७/८९००। ३—कीथ सस्कृत ड्रामा पृ०१६

४—वि० ग्रो० जे० २२/२२३। ५—वि० ग्रो० जे० १८/५९।

सूक्त पूर्णतः नाटकीय हैं और नाटकों में गद्य पद्य का मिश्रण इनका अर्वाचीन उदाहरण है किन्तु साहित्य में ऐसे किसी भी प्रकार के संकेत प्राप्त नहीं होते हैं जो इन तर्कों का समर्थन करें।

वैदिक यज्ञों में अभिनय—आर्यों के यज्ञ, केवल गाए गए सामों और देवों के सम्मान में कहे गए स्तवों से ही पूर्ण न रहते थे, किन्तु कुछ ऐसे उत्सव सम्बन्धी क्रिया कलाप होते थे, जिनमें अभिनय का प्रयोग किया जाता था। "सोम यज्ञ के लिए सोम का क्रय" सोम विक्रेता और क्रेता उपरोहित के बीच यह संवाद रूप से अभिनय होता था।[1] किन्तु इसे हम अभिनय कह सकते हैं क्योंकि अभिनय वही कहा जा सकता है, जिसमें पात्र अभिनय के लिए ही किसी अन्य का रूप धारण करे और कहे-सुने, और इस क्रिया से जब दूसरे आनन्द प्राप्त करें।[2]

डा० कीथ पूर्ण निश्चय के साथ कहते हैं कि यजुर्वेद काल तक नाटकों का अस्तित्व न था। वे नट शब्द को बहुत अर्वाचीन कहते हैं। *उनके मत से शैलूष शब्द प्राचीन है।*[3]

प्रो० हिलब्रान्ड और डा० कोनो का विश्वास है कि यज्ञीय नाटक अवश्य थे। इनमें गीति, नृत्य और संगीत की प्रधानता होती थी। कौषीतकी ब्राह्मण[4] इसका प्रमाण है। किन्तु वैदिक सूक्तों का धार्मिक प्रयोग प्रारम्भ में न मानकर लौकिक उपयोग कोई भी विद्वान् मानने को तैयार नहीं हैं। *हम यह मानने को तैयार हैं कि वेद नाटकीय तत्वों* के मूल स्रोत हैं।

नाटकों की उत्पत्ति व विकास में महाकाव्यः—रामायण[5]

१—हिलब्रान्ड वेदि० माइथा० १/६९। २—*कीथ सं० ड्रामा पृ० २४*
३—वी० एस० २०/४।   ४—२९/५।
५—रामायण १।४।९।७२।६७।१५, २।१।१७, २।६९।४
२।८३।१५।

और महाभारत†† के युग में इस कोमल कला की ओर विशेष विकासमय प्रगति हुई। जिसके प्रमाण रूप में नट, नर्तक, नाटक, रंगमंच, कुशीलव आदि पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग हैं। महाभारत के शान्ति और अनुशासन पर्व में नाट्य के स्पष्ट संकेत हैं। प्रो० हिलेब्रान्ड महाभारत काल में नाटक के विकसित रूप की सत्ता मानते हैं।[1] अनुशासन पर्व में टीकाकार नीलकण्ठ नट और नर्तक शब्द का स्पष्ट प्रयोग बताते हैं। हरिवंश पुराण में तो रामायण पर आधारित नाटक के अभिनय का उल्लेख है। हरिवंश ईसा की द्वितीय शती से पहिले का है। रामायण २/६७/१५ में समाज उत्सव में नटों और नर्तकों का वर्णन भी या है। रामायण २/६९/३ में 'व्यामिश्रक' शब्द संस्कृत-प्राकृत नाटक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। डा० कीथ का कहना है कि कुश और लव वाल्मीकि रामायण का गान करते थे, इसका प्रमाण है। इससे अनुमान होता है कि 'कुशीलव' कुश और लव के मिश्रण से बना है तथा रामायण का गान अभिनय से सम्बन्धित था।[2]

व्याकरण और नाटकों का विकास—पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में नट सूत्र का स्पष्ट उल्लेख किया है। कात्यायन और पतञ्जलि[3] ने कंस वध और बलि बध नाटकों के संकेत दिए हैं जो पाणिनि रचित हैं। डा० वेबर महाभाष्य के "शौनिक, शोभिका, शोभानिका", शब्दों से नाट्य रंगमंच की विद्यमानता व्यक्त करते हैं। डा० ल्यूडर्स का कहना है कि 'शौभिक' छाया चित्रों की व्याख्या करने वाले को कहते हैं। प्रो० लेवी 'शौभिक' को नटों के शिक्षक की संज्ञा देते हैं। हमारा तात्पर्य केवल इतना है कि ई० पू० २०० के आस-पास नाटक विकास में थे।

†† महाभारत १।५१।१५, १।२२९।४, १।२२८।१०, २।१२।३६।

१—शान्ति पर्व १२/१४०/२१।   २—सं० ड्रामा पृ० ३१।

३—महाभाष्य ३/३६।

कंसवध और बलिबन्ध से ज्ञात होता है कि नाटकों का सम्बन्ध धर्म और उत्सवों से भी घनिष्ट था। प्रो० होलिकोत्सव को तुलना 'मई' से में करते हैं जिसके आधार पर हरप्रसाद शास्त्री भारतीय नाटकों की उत्पत्ति, इन्द्र-ध्वजा के उपलक्ष्य में उनके अभिनन्दनोत्सव के व्यक्त करने के रूप में हुई कहते हैं। यह इन्द्र की विजय मेघों के (राक्षसों)-ऊपर वर्षा काल में हुई थी। इस धारणा के अनुसार धार्मिक रामलीलाओं और कृष्ण लीलाओं का भी प्रभाव नाटकों की उत्पत्ति और विकास में है। किन्तु होलिकोत्सव और वर्षा ऋतु का कोई सामञ्जस्य नहीं स्वीकार किया जा सकता है

नाटकों की उत्पत्ति की लौकिक धारणाएँ—प्रो० हिलेब्राण्ड और कानो का कहना है कि नाटकों की उत्पत्ति के चिन्ह धार्मिक कृत्यों और और उत्सवों में नहीं खोजने चाहिए। ये विकास में केवल सहायक है। बहुरूपियों का अनुकरण करना महाकाव्यों के साथ संस्कृत नाटकों के मूल में हैं। किन्तु नाटकों के पहिले बहुरूपियों के ऐसे अस्तित्व का कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं है। जातकों में यद्यपि इसका उल्लेख है। किन्तु जातकों से सैकड़ों वर्ष पहिले संस्कृत नाटकों का अस्तित्व था, यह सिद्ध है।

प्रो० पिशेल[1] का कहना है कि पुत्तलिका नृत्य भारत की वस्तु है। नाटकों की उत्पत्ति का मूल वे पुत्तलिका नृत्य को स्वीकार करते हैं। किन्तु पुत्तलिका नृत्य का प्रचलन जिस समय भारत में था, उसी समय संसार के अन्य देशों में भी। हां, इस नृत्य की जन्मभूमि भारत अवश्य है। महाभारत तथा गुणाढ्य की बृहत्कथा में पुत्तलिका नृत्य का उल्लेख है। बृहत्कथा ३००ई०की है। इसके पश्चात राजशेखर की बालरामायण में इसका उल्लेख है किन्तु हमारे भास, कालिदास, शूद्रक आदि तो बहुत पहिले के हैं।

१—होम आफ दि पपट प्ले (लन्दन)

प्रो० कोनो का छायानाटको से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त अब भी इस रूप मे आगया है कि इन नाटको का भी हाथ मे रूपको विकास मे है। क्यो कि छायानृत्य ई० पू० के नही है। कोनो का कहना है कि अशोक के चौथे शिलालेख मे 'रूप' का उल्लेख है। किन्तु रूप से नाटक और वह भी छायानाटक अर्थ लेना वह भी बौद्ध साहित्य से जहा उस युग मे नाटक देखना हेय था-कोनो के ही वश की बात है। पिशेल के तर्क कि छाया नाटक बहुत प्राचीन हैं,मूल्य हीन हैं, क्योकि प्राप्त छाया नाटक दूतांगद १३ वी शती का है।

डा०रिजवे का कहना है कि सभी धर्मों मे मृतात्माओ के प्रति आदर और श्रद्धा व्यक्त की जाती है। इसी तत्व के आधार पर नाट्योत्पत्ति हुई। किन्तु डा० कीथ ने इसका पूर्णत खण्डन कर दिया है।[1]

ग्रीकप्रभाव—डा० वेबर सस्कृत नाटको की उत्पत्ति और विकास मे ग्रीक नाटको का प्रभाव प्रतिपादित करते हैं।[2]

किन्तु यह धारणा अब समूल नष्ट हो चुकी है। भारत मे यूनानियो के आने के पहिले नाटक थे, यह सिद्ध है, तथा भारतीय नाटकीय तत्व ग्रीक नाट्य तत्वो से पूर्णतया भिन्न और स्वतंत्र हैं। डा० विण्डिश ने वेबर की बात को प्रामाणों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया,[3] किन्तु कीथ[4] और लेवी[5] ने इस सिद्धान्त को समूल ही नष्ट कर दिया है।

हमारे विचार से सभी विद्वान् सत्य के कुछ२ अशो को लेकर चले हैं। वस्तुत. नाट्योत्पत्ति के मूल तत्व वैदिक साहित्य मे प्राप्त हो जाते हैं और जिनका अधार स्पष्टतः धार्मिक है। तदुपरान्त नाटको के विकास -

१—जे० आर० ए० एस० १९११, १००८ २—कीथ स० ड्रामा पृ० ५०
३—१८८२ की बर्लिनि ओरियन्टल कान्फ्रेंस ४—स० ड्रामा पृ० ३१
५—टी0 आई० १/३४५

म विविध तत्व जो विद्वानों ने एकांगी रूप से उद्भव के ही मूल में रख दिए हैं—सहायक होते हैं। कीथ आदि सभी विद्वान, इस विषय में सहमत है। भारत में नाटक ईसा से ६-७ शती पूर्व थे यह सिद्ध है।

४ लौकिक संस्कृत साहित्य में नाट्य परंपरा और भवभूति—

संसार का सबसे समृद्ध संस्कृत साहित्य विदेशी यवन आक्रमणों के कारण अपने धन की रक्षा न कर सका। लुटेरों ने जीभर कर होलियां-ग्रन्थरत्नों की जलाईं। प्राप्त नाटक साहित्य के आधार पर हमारे आदि नाटककार *भास हैं। इनके १३ नाटक म० म० गणपति शास्त्री ने* प्रकाशित किए हैं। इनका समय कालिदास से पूर्व निश्चित है। कुछ *विद्वान जो कालिदास को ई० पू० का स्वीकार करते है, भास को तीसरी* या चौथी शती ई० पू० का कहते हैं, और कुछ विद्वान जो कालिदास *को गुप्त कालीन मानते हैं, भास को तृतीय या चतुर्थ शती ई० का* मानते हैं।

द्वितीय नाटककार जिनकी कृति समुपलब्ध है शूद्रक है। इनका मृच्छकटिक तृतीयशती ई० पू० की रचना है। विद्वान् कालिदास के रामिल या सौमिल्ल से इनकी एक रूपता करते हैं।

तृतीय प्रसिद्ध नाटककार महाकवि कालिदास हैं, जिनकी कला से सस्कृत साहित्य विश्व विश्रुत हो गया है। इनके बाद हर्ष-भट्टनारायण और भवभूति आदि आते हैं।

हम यहाँ पर, भास से हर्ष और हर्ष से भवभूति तक एक सुदीर्घ पथ माप चुके हैं। जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो हमें महान् आश्चर्य होता है कि कैसे सरल और सादे वैदिक स्तवों ने क्रमश. प्रगति और

विकास करते करते कलामय अभिनयके स्थान को प्राप्त कर लिया। यह विकास की घटना गति मे धीमी और स्वाभाविक थी, जिसस इसे एक दीर्घ काल इस कार्य मे व्यतीत करना पडा है।

भास, कालिदास और शूद्रक सफल नैसर्गिक और जनप्रिय कलाकार थे। इसके बाद विवेकशील मानव स्वभावत इस ओर मुडा कि इस नूतनभाव और रम्य कला को वर्गीकृत करके नियमबद्ध कर व्यवस्थित कर दिया जाय। यह ५ वी और ६ वी शती की बात है जब कि नाटक के क्षेत्र मे नियमबद्धता और वर्गीकरण की प्रवृत्ति का मूर्त फल हर्षवर्धन और भट्टनारायण के रूपक हुए, जिन्हे हम हिन्दू नाट्य शास्त्र (ड्रामेटर्जी) के उदाहरणो के लिए विख्यात पाते हैं।

महान् लेखक दूसरे महान् लोगो के सदृश प्रात: कालीन मरीचिमाली की भाति उदय होते हैं। वे नई प्रेरणा और नये विचार लाते हैं। अतीत के अन्धकार को नष्ट कर उसके बीच से भविष्य के मार्ग का निर्माण करते है और एक लम्बी छाप छोड जाते हैं। महान कलाकार कालिदास की छाप एक बडे युग तक रही और सभी लेखक उनसे प्रभावित होते रहे हैं। किन्तु ६१०-६२४ ई० मे हर्षवर्धन ने नाट्यकला मे एक नई परपरा का श्रीगणेश कर दिया। जिसके उदाहरण-रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द हैं। "हर्षवर्धन के साथ सबसे बडी समस्या थी कि वह नैसर्गिक नाटककार न थे। वे नाट्य नियमो के महान् ज्ञाता थे।"[1] जिसका परिणाम मे अवश्यम्भावी था और हुआ भी। उनकी कृतियामानो नाटकीय नियम निकष मे कसने के लिए ही रची गई हैं।

हमने देखा कि हर्ष ने भाषा और कला को नाट्यशास्त्र के नियमो

१—ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर पृ० १२६

के आधीन कर अपनी रचनाएं की हैं और उ है एक विशिष्ट स्तर पर स्थापित किया है। नाट्य रचना कवि कर्म के रूप मे दिखाने की वस्तु हो गई है। हर्ष ने एक सफल नाटक के लिए चार आपेक्षित तत्व निर्दिष्ट किए हैं १— चतुरकवि, २— प्रधासकदर्शक, ३— कुशलनट,

४— प्रसिद्धकथानक।

किन्तु महाकवि भवभूति ने हर्ष की इन धारणाओं के प्रति विरोध किया। भवभूति का कहना है कि नाटककार के लिए पहले नाटककार होना आवश्यक है।[1] भवभूति ने उपर्युक्त दोषों की निन्दा की है और उनके प्रति जागरूकता दिखाई है। वे शृ गार की प्रेममयी कथाओं से घबडा कर महावीर चरित मे आकुल हो उठते हैं।[2] भवभूति ने हर्ष की परपरा के प्रति कथावस्तु के क्षेत्र मे भी विद्रोह किया है। हर्ष के कथानक प्रेम प्रधान और राजसभाओं से संम्बन्धित शृ गारीये। भवभूति ने आदर्श सामाजिक लोक चरित्र लिये हैं। पौराणिक कथावस्तु भी सामाजिक रूप मे मौलिकता के साथ चित्रित हुई है साहित्य और जीवन एकसाथ घुल मिल गए हैं।

भवभूति के साथ मुद्राराक्षस के लेखक विशाखदत्त ने भी इस नव आन्दोलन म अपने को पीछे नहीं रखा है। नाटकीय नियमों की गौणता का यह सफल आन्दोलन भी भवभूति की विशेष बात है यद्यपि रोमास के प्रेमी और अभ्यासी पाठकों और दर्शकों ने भवभूति की यथोचित आदर देन मे कृपणता की है— जिसकी प्रतिक्रिया मे कवि चिढ जाता है[3], फिर भी भवभूति का स्थान नाट्य परम्परा मे अपना विशिष्ट महत्व सदा रखता रहा है और भविष्य मे भी रक्खेगा।

१— मा०मा० १/१०   .   २— महावीर चरित १/२-२

३— मा०मा० १/८

द्वितीय अध्याय

५—भवभूति का जीवन और समय :—

जीवन—बहुत ही चमकते और स्मरणीय दिवसो का प्रभात प्राय: तुहिन कणो से छिपा रहता है। यही बात विश्व की मेधावी विशेषकर प्राचीन भारतीय साहित्यिक प्रतिभाओ के बारे मे चरितार्थ होती है। केवल शैशव ही नही अपितु उनकी प्रौढावस्था के विषय मे भी हम कुछ नही जानते हैं। भारतीय इतिहास मे कही भी, कोई भी पृष्ठ नही प्राप्त होता है, जो उन महान् कवियों, दार्शनिको और नाटककारो के जीवन के बारे मे निश्चित सकेत दे, जिन्हाने अपनी कृतियो से भारतीय मस्तिष्क की जाज्वल्यमान शक्तियों और हृदय की सुकुमार भावनाओं की ओर विश्व को आकृष्ट करने मे पर्याप्त क्षमता अर्जित की है। आज भी जिनकी प्रतिभा के आगे मानव हृदय विमुग्ध सा हो, अपनी सम्पूर्ण शक्तियो से एकाग्र होकर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने मे गौरव मानता है।

साहित्य सुधा सूति भवभूति सस्कृत नाट्य साहित्य मे कालिदास के बाद ही प्रथम श्रेणी के नाटककारों में द्वितीय स्थान सभी विवेचकों से प्राप्त करते रहे हैं। बहुत से आलोचक तो भवभूति को कालिदास के पश्चात् स्थान देना अनुचित समझते हैं। महाकवि भवभूति ने अपने जीवन के बारे मे कही भी विशेष परिचय नहीं दिया है। उनकी कृतियों मे प्रस्तावना में उनके विषय मे कुछ स्पष्ट सकेत मिलते हैं। 'महाबीर चरित' मे भवभूति अपना परिचय देते हैं।

"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुर नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीया: काश्यपाश्चरणगुरव: पङ्क्तिपावना: पञ्चाग्नयो धृतव्रता: सोमपीथिन

उदुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति । तदामुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेय याजिनो महाकवे पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्र कीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जतुकर्णी-पुत्रः कविर्मित्रधेयमस्माकमित्यत्र भवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु ।"

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिराः ।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ॥

"दक्षिणा पथ मे पद्मपुर नामक एक नगर है। वहा पर कुछ उदुम्बर उपाधिवाले (सरनेम) ब्राह्मण रहते हैं। उनके वंश की परपरा कश्यप ऋषि से प्रादुर्भूत हुई है। वे कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी हैं और पूर्णतः श्रोत्रिय तथा सोमयज्ञ करने वाले हैं।[1] ये लोग पवित्र धार्मिक गृहस्थ थे, अपनी जाति और जनसाधारण सभी मे सम्मानित थे, तथा पञ्चाग्नि सुरक्षित रखते थे। वाजपेय यज्ञो के प्रसिद्ध याज्ञिक उदुम्बरों के इस परिवार म महाकवि नामक एक पुरुष हुए। जिनकी पाचवीं पीढी म हमारे नाटककार पैदा हुए। भट्टगोपाल नामक महापुरुष भवभूति के पितामह और स्मरणशक्ति के धनी नील-कण्ठ उनके पिता थे। भवभूति की माता का नाम जतुकर्णी था। भवभूति का उपनाम कण्ठ था। वे[2] व्याकरण मीमासा अलकार और न्याय के ज्ञाता थे तथा वेदो, उपनिषदों, पुराणों, सांख्य, योग और बौद्धदर्शनों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। उनके गुरू का नाम ज्ञाननिधि था, जो एक पहुँचे हुए योगी थे। उन्हे अंगिरा के समान कहा जाता था और साधुओं के मध्य मे उनकी गणना सर्वप्रथम होती थी। भवभूति का नटों के साथ अच्छा सम्बन्ध था।"

इतना वर्णन भवभूति कृत नाटको की प्रस्तावनाओ से उनके जीवन के विषय में प्राप्त होता है। ग्रन्थों के आधार पर अनुमान किया जाता

---

1 भवभूति एण्ड दि वेद : कीथ
2 "पद वाक्य प्रमाणज्ञः"—उत्तर रामचरित प्रस्तावना

है कि 'मालती माधव' के नायक की भांति भवभूति भी अपने युवक जीवन के प्रारम्भ म बरार का छोड़कर उज्जैन या पदमावती में आ गये थे। जहा पर उन्होंने अपने गुरू ज्ञाननिधि के शिष्यत्व में अपना अध्ययन पूरा किया। भवभूति न केवल शास्त्र-ज्ञान-वैविध्य ही नहीं अर्जित किया प्रत्युत मानव समाज के छोट-बडे सभी वर्गों से निकट सम्पर्क भी स्थापित किय। नटों मे तो उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। भवभूति का यह जीवन कुछ दूर तक समकालीन बाण कवि से मिलता जुलता है। उत्तर रामचरित के ४/२२ के लव के कथन स लक्षित होता है कि भवभूति न नाटको मे स्वय अभिनय किया है। सप्तम अक के अन्त मे वाल्मीकि को प्रवेश कराके कवि मानों स्वय प्रविष्ट हो रहा है और कवि के विषय म घोषणा कर रहा है। राजशेखर ने भवभूति को वाल्मीकि का अवतार कहा है। सम्भव है वाल्मीकि पात्र का अभिनय भवभूति ने किया हो जिसके कारण राजशेखर ने उन्हे अवतार कहा है। अपने नाटकों क अभिनय क लिए उन्होंने नटों को प्रत्येक प्रकार से सहयोग देकर उत्साहित किया है, इसमें तो लेशमात्र भी सदह नहीं है। यद्यपि भवभूति जनता मे प्रसिद्ध नहीं हो सके हैं फिर भी उन्हें नाटककार मान लिया गया था, और राज्याश्रय प्राप्त करने में वे सफल हो गये।

भवभूति के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध मे उनके ग्रन्थ जो हमे सकेत दत है वे अत्यन्त आकर्षक और मनोज्ञ हैं। वे कभी भी भाग्य की अनुकूलता नहीं प्राप्त कर सके हैं। कीर्ति क लिए उन्हे अन्त तक सघर्ष करना पडा है। बहुत सभव है पारिवारिक जीवन की दैनिक आवश्यकताओं और भोजन के लिए भी उन्हें कष्ट उठाना पडा हो। उनकी कृतियों के विषय म जनता के नासमझ निर्णयों की वे स्वय बडी निन्दा करते हैं।[1] इन सभी बातों स प्रगट होता है कि कवि को जीवन मे भाग्य के उलट-फेर बराबर देखने पडे हैं। अन्त में भवभूति विजयी ही सिद्ध हुए हैं।

---

1 मालती० माधव १/८   मा० मा० ८/१४,   उत्तर० ७/४

ऐसी कौन सी वस्तु है जो उन्हें विरोधी विश्व के साथ संघर्ष करने के लिए अटूट शक्ति देती रही है और जिसने उनके साहस को नये नये उत्साहों से संचित रक्खा। यह था- उनका एक आदर्श पारिवारिक जीवन के वातावरण में जन्म लेना और जीवन बिताना। यही कारण है कि उनके प्रेम का आदर्श महान् और आध्यात्मिक था। वे सांसारिक विषयोप-भोगों से, वासनाओं से कोसों दूर एक महान् साधक थे। उनके प्रेम चित्र[1] मित्र चित्र[2] और उत्तम चित्र विश्व साहित्य में अनुपम है जो उनके आभ्यन्तर की बाह्य व्यंजनाएं हैं। वे सफल जीवन के सच्चे पति और मित्र रहे हैं।

जन्मभूमि—भवभूति का जन्म स्थान पहिचानने में विद्वानों में विविध मत हैं। निश्चित निर्णय ठोस प्रमाणों के अभाव में आज तक नहीं हो सका है। अधिकतर भवभूति को बरार देशीय (दक्षिण) कहा जाता है जिसका आधार मालती माधव की कुछ प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां हैं जिनमें 'विदर्भेषु पद्मपुरम' ऐसा उल्लेख है। भवभूति के निवास स्थान का 'कलाप्रियनाथ' से विशेष घनिष्ट सम्बन्ध है। क्योंकि उनके सभी नाटक कलाप्रियनाथ के उत्सव में ही अभिनीत हुए हैं। यदि सर्व साधारण जन मान्यता के अनुसार कलाप्रियनाथ उज्जैन (मालवा) के महाकालेश्वर ही हैं, जिनका उल्लेख महाकवि कालिदास[3] और बाणभट्ट[4] ने किया है, तो सूत्रधार का कथन पूर्णतः ठीक है कि पद्मपुर दक्षिण में विदर्भ देश में है। क्योंकि उज्जैन से बरार दक्षिण में है[5]।

किन्तु हमारे अनुसार बरार मालवा से लगभग पूर्व की ओर है। कला-प्रियनाथ का मन्दिर कालपी, कन्नौज या काश्मीर में होना चाहिए। कालपी और कन्नौज का अधीश्वर यशोवर्मा था जिसकी सभा में कवि रहे हैं और बाद में वे काश्मीर रहे हैं। 'दक्षिणापथे' शब्द से सूचित है कि

1—उत्तर० /१३९ 2—मा० मा० ९/४०
3—रघुवंश ६/३४, मेघदूत ३७,३८ 4—कादम्बरी पृ० ३५ बाम्बे सीरिज
5—वेलवल्कर . उत्तर रामचरित का इन्ट्रोडक्शन पृ० ३६

भवभूति उस समय जब उनका नाटक निर्मित हुआ उत्तरापथ मे थे। यशोवर्मा के राज्य मे रहकर वे उज्जैन नाटक खेलने नही जा सकते हैं। मालती माधव की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति नेवारी सवत् २७६=११५६ की है[1], जिसम 'विदर्भेपु' यह शब्द है ही नही। मालती-माधव के दृश्य पद्मावती नगरी से प्रारभ होते हैं। इस नगरी की स्थिति और देशकालीन रूपरेखा बड़ी विशेषता से चौथे अंक के अन्त और नवम अक के प्रारम्भ म पूर्ण विस्तार क साथ वर्णित है।

श्री एम. वि लले ने पद्मावती की एकता पवाया नामक गाव से, जो नरवर क उत्तर पूर्व ग्वालियर प्रदेश के मध्य मे है, मानी है। लेले ने पद्मावती और भवभूति के पद्मपुर को एक ही माना है।[2]

कालीप्रियनाथ के बारे में बिवेचन करते हुए उन्होने लिखा है कि 'दक्षिणापथे' शब्द यह अर्थ सूचित करता है कि-जहा नाटक खेला गया वहा से पद्मपुर दक्षिण की ओर था। कालपी कन्नोज राज्य की सीमा के भीतर है और पवाया वहा से दक्षिण की ओर है, जहा कवि का घर और परिवार था। लेले की धारणाओ की पुष्टि प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता कनिंघम भी करते हैं।[3] कालपी और कालप्रिय का नाम साम्य सन्देह की जगह नही छोड़ता। पद्मावती के वर्णनो की पूरी उपयुक्तता पवाया और नरवर से बैठ जाती है।

डा० वेलवलकर का कथन है कि मालती-माधव मे पद्मावती के वर्णन मे भवभूति कहते हैं कि ये पर्वत मुझे दक्षिण के पर्वतो और गोदावरी की स्मृति करा देते हैं। अतः भवभूति दक्षिण प्रदेश से पूर्व परिचित थे और पद्मावती से बाद मे उनका सपर्क हुआ। किन्तु हमारा कथन है कि भवभूति ने मालतीमाधव से पहिले उत्तर रामचरित की रचना की थी, जिसे हम आगे के अध्याय मे सिद्ध करेंगे, और यहां

1—नेपाल दरबार लाइब्रेरी मैन्यू स्क्रिप्ट न० १४७३

2—'मालतीमाधव' सार और विचार पृ० ५

3—आर्कियोलाजिकल रिपोर्ट १८६२-६५, पुस्तक २, पृ० ३०७-८

पर उत्तर के गोदावरी वर्णनों की स्मृति के बारे में मालतीमाधव मे उनका संकेत है।

डा० भाण्डारकर का कहना है[1] कि भवभूति वरार के ही निवासी थे। आज मध्य प्रदेश के चांदा जिले के आस पास बहुत से वाजपेयी ब्राह्मण परिवार हैं जो कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता के अनुयायी हैं। चांदा वरार और गोदावरी के अत्यन्त सन्निकट है।

कुछ भी हो इतना तो निश्चित है कि भवभूति के नाटक कालपी में खेले गए हैं और पद्मावती पवाया से एकता रखती है। भवभूति की युवावस्था तथा नाट्य रचना पवाया (नरवर) मे प्रफुल्लित हुई है। जहा से वे कन्नौज की राजसभा मे प्रसिद्ध होकर प्रवेशकर सके हैं। जिसका अप्रत्यक्ष प्रमाण माधव का चरित्र है जिसे कुछ दूर तक[1] हम कवि के जीवन से मिलता पाते हैं। कवि भी युवावस्था मे पद्मपुर छोड़कर पद्मावती आये होंगे।

विभिन्न विद्वानों ने पद्मपुर को एकता- पम्पुर(काश्मीर), उज्जैन (मालवा)करवीरपुर (कोल्हापुर) अमरावती के पास का स्थान और पवाया (नरवर, ग्वालियर) से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यह प्रश्न अभी और प्रमाणों की अपेक्षा समाधान मे रखता है। हा भवभूति का जन्म दक्षिण में हुआ है, यह सभी को स्वीकार है।

नाटककार का नाम—महाकवि भवभूति के नाम के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बहुत मतभेद है। डा० भाण्डारकर व बेलवलकर आदि का कहना है कि नाटककार का वास्तविक नाम श्रीकण्ठ था और भवभूति उनकी उपाधि थी। कुछ व्यक्ति भवभूति *उपाधि के समर्थन में*—

"तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव
गिरिजाया: कुचौ वन्दे भवभूति सिताननौ।"

[1]—मालतीमाधव के द्वितीय संस्करण की भूमिका पृ० ३१

और–

"साम्ब पुनातुभवभूति पवित्रमूर्ति."

पद्य उद्धृत करते हैं, जिनमे त्रिपुरारि, वीरराघव, मगेशराम, कृष्ण तैलग आदि है। भ्रम का कारण एक यह भी है कि उनके पिता के नाम के साथ भी कण्ठ' (नीलकण्ठ) जुडा हुआ है। किन्तु यदि 'कण्ठ' शब्द वश परपरागत था तो भवभूति क पितामह भट्टगोपाल के साथ भी जुडा होना चाहिए था, जो नही लक्षित होना है। श्रीकण्ठ नाम के समर्थको के तर्क हैं कि–प्राचीन काल म कविता मे किसी विशिष्ट शब्द के प्रयोग से कवि का नाम उन शब्द स प्रसिद्ध हो जाता था। घण्टा माघ— माघ कवि के द्वारा 'घण्टा' शब्द के प्रयोग के कारण और छत्रभारवि— भारवि के द्वारा छत्र शब्द के प्रयोग के कारण प्रसिद्ध होगए। दशकुमार चरित की टीका म घनश्याम लिखते है कि कवि ने दण्ड शब्द का प्रयोग प्रारभ मे किया है अतएव कवि का नाम दण्डी हो गया है। इन प्रमाणो के आधार पर उनका कहना है कि उपरिलिखित श्लोको मे 'भवभूति' शब्द के वैशिष्ट्य के कारण श्रीकण्ठ का नाम भवभूति पड गया है। डा० वेलवलकर ने तो भवभूति को एक सुन्दर और आधुनिक मराठी ढग का नाम दे दिया है— श्रीकण्ठ नीलकण्ठ उदुम्बर[1]। किन्तु उन्हे यह ध्यान नही रहा है कि उस युग म दो चार अक्षरो क छोटे से नाम ही पर्याप्त होते थे। ऐसे नामो का पता प्राचीन युग मे कही भी नहीं चलता है।

कल्पना और अनुमान पर आधारित तर्क लिखित प्रमाणों के सामने कोई अस्तित्व नही रखते है। प्राप्त साहित्य के किसी भी साधक ने नाटककार का उल्लेख श्रीकण्ठ शब्द से नही किया हैं। सभी ग्रन्थो, सुभाषितो और ऐतिहासिक उल्लेखों मे भवभूति नाम ही मिलता हैं।

[1]—उत्तर रामचरित, इन्ट्रोडक्शन पृ० ३१

१—बभूव वल्मीकभव पुराकविस्तत प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थित पुनर्यो भवभूति रेखया स वर्तते सम्प्रति राजेश्वर ॥[1]

—राजशेखर

२—कविर्वाक्यतिराज श्री भवभूत्यादि सेवित ॥"[2]

—कल्हण

३—भवभूइ जलहि निग्गय कव्वामय रसकणा इव फुरन्ति ॥[3]

—वाक्पतिराज

४—भवभूते सम्बन्धात् भुधरभूरेव भारती भाति ॥"[4]

—गोवर्धनाचार्य

५—भवभूते शिखरिणी निरर्गल तरङ्गिणी ॥"[5]

—क्षेमेन्द्र

और भी बहुत से उद्धरणों मे सवत्र भवभूति नाम ही नाटककार के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मालतीमाधव की प्रस्तावना मे 'भवभूतिनामा[6] कवि" शब्द है। जिसका अर्थ ही यह होता है कि भवभूति नाम है जिस कवि का। व्याकरण के नियमानुसार समास मे यही अर्थ निर्णय के रूप प्रत्यक्ष आता है। जहाँ सदेह का स्थान नही है।

"भवभूतिर्नाम' वाक्य मे 'नाम' यह अव्यय है। जिसका अर्थ प्रकाशन है। सस्कृत साहित्य मे किसी वस्तु के नाम(सज्ञा) बताने की यह एक साधारण और परपरागत शैली रही है कि व्यक्तिवाचक सज्ञा के साथ 'नाम' अव्यय को प्रयुक्त कर देना चाहिए। जैसे—कालिदास—'हिमालयो नाम नगाधिराज" "गिरिः प्रस्रवणो नाम" "श्रमणा नाम सिद्ध शबरी" आदि।

1—बालरामायण 2—राजतरंगिणी 3—गौडवहो
4—गाथा सप्तशती 5—सुवृत्ततिलक 6—जगद्धर टीका निर्णय सागर

भवभूति—उम्वेक, मंडन, सुरेश्वर, और विश्वरूप:—कुछ दिनों म एक नये ढग के विवाद न विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है।[1] यद्यपि वह भ्रान्त मा है। किसी विशिष्ट विद्वान की साहित्यिक मान्यता बहुत दूर तक प्रभावित करने मे समर्थ होती है।

मालतीमाधव की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति मे जो सभवत ४०० वर्ष स अधिक पुरानी है, तृतीय और छठ अक के अत मे उल्लेख है– 'प्रकरणमिद कुमारिलशिष्यस्योम्वेकाचार्य स्येति।" इसी प्रति के अन्य अको म भवभूति रचित होने का उल्लेख है। इस प्रमाण के बल पर भवभूति महान मीमासक कुमारिल के शिष्य सिद्ध होते हैं। आचाय उम्वेक कुमारिल भटट के शिष्य और ऊँचे मीमासक थे। यह प्रभाकर के विरोधी और कुमारिल के 'श्लोकवार्तिक' के ऊपर टीका करनेवाले हैं। इसस यह सिद्ध हुआ कि भवभूति का दूसरा नाम उम्वेक था। इस विषय पर विचार का एक पक्ष यह भी हो सकता है कि– प्राप्तमालती माधव, एक मिश्रित कृति है। जिसके कुछ अश की रचना उम्वेक ने और कुछ अंश की रचना भवभूति ने की है। सभव है भवभूति रचित मालतीमाधव के कुछ अक उम्वेक को पसद न आए हों और उन्होने उनके स्थान दूसरे अक निर्मित कर रख दिए हों। यही कारण है कि भवभूति रचित कुछ पद्य जो सुभाषित ग्रन्थों मे सकलित हैं —प्राप्त नाट्यत्रयी मे नही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार उत्तररामचरित की एक हस्त लिखित प्रति भवभूति का नाम नीलकण्ठ देती है। मालती माधव की ११५६ ई० की हस्तलिखित प्रति मे दशम अक के अन्त मे है—"कृतिरियम् महाकवेर भूगर्भस्य" जिससे यह झलकता है कि भूगर्भ भी भवभूति का एक नाम रहा होगा।

भवभूति और कुमारिल दोनों दाक्षिणात्य थे। दोनों के समाकालीन

[1]—लेले पृ०८४, एम० पी० पण्डित, वही के इन्ट्रोडक्शन मे, डा० भाण्डारकर : मालती माधव की भूमिका, पृ० ८

होने की सम्भावना भी कम नहीं है। भवभूति ने मीमांसा शास्त्र के पारिभाषिक शब्द 'अर्थवाद' का उल्लेख किया है[1]। किन्तु डा० वेलवलकार का कहना है कि सबल प्रमाणों के अभाव में हम भवभूति को कुमारिल भट्ट का शिष्य नहीं कह सकते हैं। क्योंकि इनकी कृतियों में वेदान्त दर्शन की सर्वत्र छाप है[2]।

विचार का विषय यह है कि भवभूति ने अपने गुरु को 'ज्ञाननिधि' नाम से अभिहित किया है न कि कुमारिल भट्ट, जिसमें किसी प्रकार की आपत्ति उन्हें न होनी चाहिए थी। हमारा यह मत है कि कुमारिल का ही दूसरा नाम ज्ञाननिधि हो सकता है अथवा भट्ट जी की यह उपाधि रही होगी। कवि श्रद्धावश भी स्वनामधन्य गुरु का नाम न देकर उन्हें ज्ञाननिधि रूप में उपस्थित कर सकता है। 'परमहंसाना श्रेष्ठा: ज्ञाननिधि-' का विशेषण उन्हें वेदान्ती सिद्ध करता है। आचार्य कुमारिल पूर्व मीमांसा के विद्वान तो थे ही किन्तु उत्तर मीमांसा के भी पूर्ण पण्डित थे, ऐसा विद्वानों का कहना है। श्लोक वार्तिक की यह उक्ति भी यही सिद्ध करती है.—

"इत्याह नास्तिक्य निराक रिष्णु–
रात्माऽस्ति तां भाष्यकृ:त्र युक्त्या
दृढ़त्वमेतद्विषयश्च बोध:
प्रयाति वेदान्त निषेवणेन।"

साथ ही यह कोई ईश्वरीय नियम नहीं है कि एक विषय का विद्वान दूसरे विषय का विद्वान न हो सके। उस युग के विद्वान दूसरे विषय के मर्मों को जानने के बाद उनके खण्डन अथवा मन्डन में तत्पर होते थे। आचार्य शंकर इस विषय में प्रमाण हैं।

क्या एक शिष्य के अनेक गुरु नहीं हो सकते हैं। भवभूति के पूर्व

---

[1]—उत्तर रामचरित १/३६ [2]—इन्ट्रोडक्शन : उत्तर रामचरित पृ०४२

मीमांसा के गुरु कुमारिल भट्ट और उत्तर मीमांसा के ज्ञाननिधि हो सकते हैं। जिन्हें हम आगे आचार्य शंकर के साथ एकरूपता पर विचार करने के लिए पुन उपस्थित करेंगे।

उत्तर रामचरित के चौथे अंक में दाण्डायन और सौधातकि वाद-विवाद मे 'समांसोमधुपर्क' इति—यह जो वाक्य है, वह मीमांसकों की भांति श्रौतकर्म समयक के रूप मे भवभूति को उपस्थित करता है। भवभूति के विवर्तवाद की प्रसिद्धि तो है ही। यही कारण है कि भवभूति ने पहिले 'पदवाक्य[1] प्रमाणज्ञ:,' विशेषण अपने लिए दे दिया है। श्लोकवार्तिक की तात्पर्य टीका मे 'भट्टोम्वेक' शब्द आया है, जो कि भवभू ति के पितामह भट्टगोपाल की भांति पूर्व सयोजित भट्ट विशेषण के सहित है। चतु शास्त्रवेत्ता की उपाधि उस समय 'भट्ट' थी। भवभूति के पिता चारों शास्त्रो के पण्डित न थे। इसीलिए उनके नाम के पहिले भट्ट शब्द नहीं व्यवहृत हुआ है। तात्पर्य टीका के प्रक्रम मे भट्टोम्वेक ने "ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञा जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैव यत्न:। उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समान धर्मा कालो ह्यय निरवधिविपुला च धरणी॥" श्लोक स्वयकृत के रूप में दिया है। यह श्लोक भवभूति के मालतीमाधव का है।[2] इन सभी प्रमाणों से उम्वेक और भवभूति की एकता सिद्ध हो जाती है।

प० क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय का कहना है[3] कि उम्वेक और भवभूति एक नहीं हैं। यद्यपि प्रत्यक स्वरूप भगवान् चित्सुखी की अपनी नयन प्रसादिनी में "उम्वेको भवभूति." कहते हैं, किन्तु उन्हीं के शब्दों को देखिए :—

"नहि पुराप्त एव सन् नाटक नाटिकादि प्रबन्ध विरचन मात्रे णानाप्तो भवति भवभूति.। उक्त चैतदुम्वेकेन "यदाप्तोऽपि कस्मैचि-

---

[1]—उत्तर रामचरित प्रस्तावना [2]—मा० मा० १।८

[3]—दि डेट आफ कौमुदी महोत्सव पृ० ३९९, विन्टरनिट्ज मेमोरियल वाल्यूम।

दुष्टदिशानि न त्वया ननु भूतार्थ विषय वाक्यं प्रयोक्तव्य यथागुर्व्यग्र हृस्तिमूर्ध्वमनभ मत ।"

इस उल्लरण से भवभूति और उम्वेक के मध्य मे अन्तर स्पष्ट हो उठता है। 'उक्त चैतदुम्बेकन' के स्थान पर 'उक्त चैतत्तेनैव' होना चाहिए। चट्टोपाध्याय जी आगे कहते हैं कि भवभूति ऐसे गर्वीले व्यक्ति की शैली से उम्वेक की शैली का मेल भी नही बैठता है। किन्तु पण्डित जी ने यह विचार नहीं किया है कि एक ही व्यक्ति विषयानुरूप भिन्न भिन्न शैलियाँ अपना सकता है, यदि वह सिद्धहस्त कलाकार है। दर्शन और साहित्य की शैलियाँ भिन्न भिन्न होती हैं।

मीमासक मण्डन मिश्र जब आचार्य शकर से परास्त होकर सन्यासी हुए तो उनका नाम सुरेश्वराचार्य हो गया। माधव 'शकर-विजय' मे मडन को ही सुरेश्वर कहते हैं। 'विवरण प्रमेय संग्रह' में माधव सुरेश्वराचाय की 'बृहदारण्यक वार्तिक' से उद्धरण देते हैं किन्तु लेखक का नाम विश्वरूपाचार्य कहते हैं। माधव के मत से-मडन, विश्वरूप और सुरेश्वर एक ही व्यक्ति हैं। विभावन ने याज्ञवल्क्य स्मृति की विश्वरूप कृत व्याख्या की व्याख्या मे लिखा है—

"भवभूति सुरेशाख्यं विश्वरूपं प्रणम्य तम्"

इस पद्य से भवभूति, सुरेश्वराचार्य और विश्वरूप की एक रूपता स्पष्ट सिद्ध है। प्रत्यक् स्वरूप भगवान् अपनी 'नयन प्रसादिनी' में उम्वेक को भवभूति कहते हैं।[1] भवभूति की सभी कृतियाँ मीमासा, स्मृति और वेदान्त मे उनकी समान प्रवीणता प्रदर्शित करती हैं। माधव अपने 'शकर विजय' मे स्पष्ट रूप से कहते हैं, कि उम्वेक मन्डन मिश्र का ही नाम था और वे विश्व रूप भी कहे जाते थे[2]।

उपर्युक्त विवेचन से यही सिद्धान्त सशक्त रूप से सामने आता है कि स्पष्ट प्रमाणों के अभाव मे हम भवभूति उम्वेक, मडन, सुरेश्वर

[1]—बम्बई एडीशन तत्वप्रदीपिका २६५ [2]—शकर विजय ७/११३-१६

और विश्वरूप को पृथक् पृथक् व्यक्तियाँ क्यों मानें ? जब कि इनकी एक रूपता के स्पष्ट लिखित प्रमाण हमारे सामने हैं।

भवभूति का पाण्डित्य—महाकवि भवभूति का अध्ययन अत्यन्त गभीर और विशाल था। उनके अगाध पाण्डित्य का परिचय मालतीमाधव से चलता है, जिसमें उन्होंने सभी शास्त्रों के अध्ययन की ओर स्पष्ट संकेत किया है[1]—

"यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य,
च ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चित् गुणो नाटके।
यत्प्रौढत्व मुदारता च वचसा यच्चार्थतो गौरवम्,
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्य वैदग्ध्ययो॥

वे महान विद्वान् थे। उन्होंने वेद, उपनिषद, सांख्य योग और वेदान्त का अध्ययन किया था। उत्तररामचरित की प्रस्तावना में वे स्पष्ट शब्दों में कहते है—

"पदवाक्य प्रमाणज्ञ"

अर्थात् व्याकरण, मीमांसा और न्याय शास्त्र के पारगत। कवि गौड़ी रीति के आचार्य है। वाणी तो कवि के भावों और विचारों का अनुगमन करती चलती है। उनका कथन वस्तुतः सत्य है—

"यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।"[2]

वेद और दर्शनों सम्बन्धी उनका ज्ञान अनुपम था।

महावीर चरित में पुरोहित की प्रशंसा में—"राष्ट्रगोपः पुरोहित" यह ऐतरेय ब्राह्मण का प्रसिद्ध पद उद्धृत किया गया है।

'विश्वकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः॥[3]

---

[1] मा० मा० १/१० [2]—उत्तर० २।२, [3]—उत्तर० ६।६,

इस पद्य मे कवि ने अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है । व्याकरण दर्शन के अनुसार कवि शब्द-ब्रह्म के भी उपासक हैं । उत्तर के प्रारभ मे—

"वाणीममृतामात्मनः कलाम्"

और सप्तम अक के अन्त मे—

'शब्दब्रह्मविद' से यही सिद्धान्त प्रस्फुटित होते हैं । भवभूति का वेदान्त आचार्य शकर के वेदान्त से कहीं २ अन्तर भी रखता है । उत्तर के द्वितीय अक मे भवभूति "शब्द ब्रह्मणस्तादृश विवर्तम्" मे सृष्टि को परिणाम स्वीकार करते हैं । जबकि शकराचार्य विवर्त मानते हैं ।

मालती माधव मे कवि ने सांख्य, योग बौद्ध और तत्र आगमों का ज्ञान प्रदर्शित किया है । पातञ्जल योग दर्शन और कापालिक दर्शन का चित्रण मालतीमाधव के ५/१,२[1] मे साग निरूपित हुआ है । इसी नाटक[2] के ५।१० म कवि ने महान कौशल के साथ माधव के मुख से मालती के हृदय अधिष्ठित होने के विषय में—योगाचार, सांख्य, सौत्रान्तिक, त्रिदण्डि, पातञ्जल, नैयायिक, विज्ञानवाद आदिमतों के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है ।[3] उत्तर रामचरित मे जनक के मुख से "असुर्यानाम ते लोका:" ईशावास्योपनिषद की व्याख्या कराई है । उत्तर रामचरित के २।३ मे 'उद्गीथविदो वसन्ति' में कवि ने छान्दोग्य उपनिषद् के उद्‌गीथ = प्रणव = ओम्-रूपी त्रिगुणात्मक एकाक्षर ब्रह्म का ही चित्रण किया है । कवि छान्दोग्य के पूर्ण ज्ञाता थे । भवभूति की भाषा में दर्शन के पारिभाषिक शब्द इतने अधिक हैं कि जिनसे प्रतीत होता है-मानो लेखक दर्शनों का सतत चिन्तन करता रहता है । काम शास्त्र के तो वे आचार्य ही थे । मालतीमाधव के प्रथम अक मे माधव विरह व्यञ्जना मे कवि काम की दशों दशाओं का चित्रण करदेता है ।

---

[1]—मा० मा० निर्णय-सागर प्रेस [2]—चतुर्थ अक

[3]—देखिए निर्णयसागर जगद्धर टीका,

सस्कृत साहित्य मे कविकर्म में प्रवेश का अर्थी अलकार और छन्द शास्त्र का मर्मज्ञ होन का पहिले ही प्रयत्न करलेता है। भवभूति इन शास्त्रों मेपूर्ण रूप से निष्णात थे। जिसका प्रमाण हम आगे के अध्यायों मे अवसर आने पर देगें।

महाकवि महाकाव्य (रामायण और महाभारत) के ज्ञाता तो थे ही, उनका पौराणिक ज्ञान भी महान् है। उत्तर रामचरित का कथानक पद्मपुराण के पातालखड से लिया गया है। विद्याधर की लवी विज्ञप्ति मे (उत्तर रामचरित) भवभूति ने मार्कण्डेय पुराण के प्रलय-विषयक विवरणको स्पष्ट रूप से उपस्थित किया है। स क्षेप में, भवभूति का शास्त्र ज्ञान वैविध्य में किसी अन्य नाटककार से कम न था।

भवभूति का समय—महाकवि भवभूति ने अपना और अपने परिवार का परिचय अपने नाटकों की प्रस्तावनाओ म छोटे से रूप मे दिया है। किन्तु अपन समय का कुछ भी सकेत उन्होने नहीं किया है। यहा तक कि उनके आश्रयदाता के विषय मे भी कोई सकेत हम उनसे नही प्राप्त कर सके हैं। उनके समय और आश्रयदाता नरेश के विषय मे हम अन्य लेखको पर आधारित हैं, जिन्होंने उनके उद्धरण दिए हैं अथवा उनका उल्लेख किया है।

१—भारतीय सस्कृत साहित्य मे कल्हण की राजतरगिणी[1] एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसके अनुसार काश्मीर नरेश ललितादित्य ने भवभूति के आश्रयदाता यशोवर्मन् कन्नौज नृपति को परास्त कर दिया।

"कविर्वाकपतिराज श्रीभवभूत्यादि सेवित·
जितो ययौ यशोवर्मा तद् गुणस्तुति वन्दिताम्।।"४/१४४

सम्राट् ललितादित्य का समय-निर्धारण सर्वप्रथम हमें करना चाहिए। इसके पश्चात् यशोवर्मा का समय निश्चित किया जा सकता है। कल्हण

---

[1]—राजतरगिणी, बाम्बे सस्कृत सीरिज, प० दुर्गा प्रसाद सपादित चतुर्थतरग ॥

ने लौकिक अथवा सप्तर्षि सवत् का व्यवहार किया है। उन्होंने अपनी कृति २४ वें लौकिक (१०७० पक) सवत् मे प्रारम्भ की थी। जयसिंह ने, जिसके राज्य मे कल्हण ने अपनी तरंगिणी की रचना की है, २२ वर्ष राज्य किया। ललितादित्य से जयसिंह का समय एस० पी० पण्डित ने ४५५ वर्ष, ७ माह, ११ दिन निर्धारित किया है। ललितादित्य का सम्राट होने का काल ६१५,४,११ शक सवत् (६९३ ई०) था। कनिघम भी यही तिथि मानते हैं। किन्तु पंडित महोदय ६९५ई०स्वीकार करते हैं जिस ट्रोयर भी स्वीकार करते हैं। विद्वान[1] ललितादित्य का समय ६९३- ७२९ या ७३० तक मानते हैं। उनका कहना है कि एम० पी० पण्डित की तिथि चीनी समय से ठीक नही बैठती है। चीनियो के अनुसार चन्द्रापीड ने, जो ललितादित्य का भाई था और तारापीड के पहिले शासन पर आरूढ हुआ, ७१३ई०मे चीन मे राजदूत भेजा और ७२० मे चीन सम्राट् के द्वारा राजा की उपाधि प्राप्त किया। कल्हण का कहना है कि चन्द्रापीड ६८९ ई० मे मर गया। चीनी समय मे कल्हण के समय मे ३१ वप का यह अन्तर विचार का विषय है। चीनी समय निर्धारण कभी असत्य नही होता है। यदि चन्द्रापीड ६२९ मे मर गया होता तो ७१३ ई० म कैसे राजदूत को चीन भेजता। कल्हण लिखते हैं कि ७३६ मे ललितादित्य ने चीन मे राजदूत भेजा। यदि चीनी समय के अनुसार कल्हण के समय (क्रानोलाजी) को ठीक करने के लिए हम ३१ वर्ष कल्हण की तिथियों मे और जोड दे तो ललितादित्य का समय ७२४-७६० ई० या ७३१-७६७ ई० होगा। और यशोवर्मा की हार ललितादित्य से ७२४ ई० या ७३१ ई० क बाद की घटना होगी।

डा० आटो स्टेन का कहना है कि यह घटना ७३६ ई० से पूर्व की नहीं हो सकती।[2] स्टेन का कथन है[3] कि चीनी लेखकों के अनुसार-

---

[1]—इन्ट्रोडक्शन उत्तररामचरित, शारदारजन रे

[2]—राजतरंगिणी, अनुवाद पृ०८/८९ [3]—राजतरंगिणी भूमिका पृ० ८९

मध्यभारत के 'आई-चा पोन मो' नामक नरेश ने ७३१ ई० में चीन में राजदूत भेजा था या, जिसकी मैं यशोवर्मा से एकता मानता हूं। वह भवभूति का आश्रयदाता था।'

मुक्तापीड ललितादित्य का जो राजदूत चीन गया था, वह अपने को मध्यभारत के सम्राट (यशोवर्मा कन्नौज) के मित्र का दूत कहता है। डॉ० स्टेन का यह कहना कि ललितादित्य ने चीन में राजदूत भेजने के बाद यशोवर्मा की हत्या—डा० जैकोबी के सिद्धान्तों और चीनी प्रमाणों से असत्य सिद्ध हो चुका है।

२—प्रो जैकोबी ने पण्डित के गौडवहो संस्करण के ८२३-८३१ के पद्यों के आधार पर कहा है कि ललितादित्य की यशोवर्मा पर चढ़ाई जिस समय हुई उस समय सूर्य ग्रहण पड़ा था। ज्योतिष के आधार पर डा० जैकोबी ने इस सूर्य ग्रहण का समय १४ अगस्त ७३३ ई० माना है। डा० भाण्डारकर भी भवभूति को यशोवर्मा की राज सभा का कवि स्वीकार करते हैं। जनरल कनिंघम के अनुसार ललितादित्य का समय ६९२-७३२ ई० है। इस निर्णय के अनुसार यशोवर्मा की पराजय ७४० ई० के लगभग हुई है।

यशोवर्मा के सभाकवि वाक्पतिराज ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में 'गौडवहो' नामक प्राकृत काव्य १२०० पद्यों में लिखा है। किन्तु यह अधूरा है, जो कवि को यशोवर्मा के राज्य का उत्तर कालीन सिद्ध करता है। इसमें लेखक एक गौड राज के वध का वर्णन करता है, किन्तु गौड राजा का कोई नाम निर्दिष्ट नहीं किया गया है। इसका सम्पादन शंकर पाण्डुरंग पंडित ने किया है। इसकी भूमिका में यशोवर्मा के समय और वाक्पति के समय पर विचार किया गया है। डा० बुहलर ने भी गौडवहो के समय आदि के बारे में विचार किया है।[1] हमारे विचार का प्रश्न यह है कि गौडवहो की रचना क्यों हुई? और इसमें गौडनरेश के नाम का भी उल्लेख नहीं है तथा उसका वध भी

[1]—इण्डि० जेड० के० एम०, बाड २ पृ० ३२८-४०

नहीं हुआ है। इसका समाधान यही हो सकता है कि वाक्पतिराज यशोवर्मा के उत्तर-काल में हुए होंगे। ग्रन्थ रचना राजा के वैभवशाली दिवसों में प्रारम्भ की होगी। इसी बीच में ललित दित्य से यशोवर्मा के पराभूत हो जाने के कारण ग्रन्थ रचना पूरी न हो सकी। यशोवर्मा के विकास काल के अन्त के साथ साथ ग्रन्थ के विकास का भी अन्त हो गया।[1] इस निष्कर्ष के आधार पर गौडवहो का रचना काल ७३६ ई० से बहुत दूर नहीं हो सकता है।

वाक्पतिराज और भवभूति की समसामयिकता दो लेखों पर आधारित है। राजतरंगिणी प्रथम और गौडवहो द्वितीय। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वाक्पतिराज गौडवहो के लेखक हैं। जिस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण वाक्पतिराज का ग्रन्थ अधूरा रह गया है, उसका स्पष्ट संकेत गौडवहो में हैं। कल्हण वाक्पतिराज, के साथ नाटककार भवभूति का उल्लेख करते हैं, यह भी निस्सदिग्ध है। वाक्पतिराज और भवभूति का कन्नौज के राज दरबार में कैसे साथ हो गया इसके विषय में कोई भी प्रमाण हमारे पास नहीं है। भवभूति वाक्पतिराज के पूर्वकालीन थे यह भी सिद्ध ही है। किन्तु राजसभा में वाक्पतिराज को विशेष सम्मान प्राप्त था। भवभूति राजा के विशेष प्रिय इस लिए नहीं हो सके कि उन्होंने राजा की प्रशंसा में कोई रचना नहीं की। यही कारण है कि भवभूति सदा अप्रसन्तुष्ट रहे है। वाक्पतिराज का नाम कल्हण ने प्रारम्भ में इसी लिए दिया है कि वाक्पतिराज राज सभा के प्रधान कवि के रूप में स्थायी स्थान प्राप्त करने में सफल हुए, भवभूति नहीं। सम्भवत: भवभूति राज सभा में जब कभी उपस्थित होते रहे हैं। इस युग में भवभूति नाम का और कोई भी कवि नहीं प्राप्त होता है।

वाक्पतिराज स्वयं गौडवहो में आठ पद्यों में भवभूति का उल्लेख करते हैं[2]। वाक्पतिराज राजा के घनिष्ठ मित्र हैं और प्रधान कवि भी

---

[1]—एस० पी० पण्डित, भूमिका गौडवहो पृ० ७२

[2]—एस० पी० पण्डित, संस्करण ७९७-८०४.

उपाधि राजा ने उन्हे दी है। यद्यपि वह नैसर्गिक प्रतिभा संपन्न कवि नही है किन्तु उन्हें जो आदर मिला है वह कमलायुध की शिक्षा और स्नेह के कारण है। उनके कवित्व म जो अमृत क छींटें है, भवभूति के काव्य-सागर के मन्थन से है।" इसके बाद वे भास कालिदास का उल्लेख करते हैं। इससे सिद्ध है कि नाटककार भवभूति की ही वह चर्चा कर रहे हैं। ७९९ पद्य मे वह भवभूति का प्रभाव और ऋणस्वीकार करते हैं।

"भवभूइ जलहि निग्गय कव्वामयरस कणा इवफुरन्ति।
जस्स विपेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु ॥"

वाक्पति राज के ऊपर भवभूति का अचूक प्रभाव पड़ा था। सम्भवतः वाक्पति न भवभूति क ग्रन्थो का गभीर अध्ययन किया था। भवभूति और वाक्पति क रचना काल मे कुछ दीर्घ अन्तर अवश्य रहा है यह उपर्युक्त कथनो स सिद्ध है। भवभूति राजा के पूर्वार्धकाल के कवि है, जबकि वाक्पति उत्तरार्ध काल के—इसमे सन्देह नही है।

कुछ विद्वानो का कथन है कि गौडवहो की रचना यशोवर्मा की पराजय के बाद ७३३–७४३ई० के बीच हुई है और भवभूति ८वीं शती ई० के पूर्वार्ध म हुए हैं।[1] पर यह असत्य सिद्ध हो चुका है। भवभूति का समय प्राय सभी विद्वान ७वी शती ई० का अन्त मानते है।

भवभूति के समय निर्धारण के विषय मे कुछ विद्वानो का मत है कि भवभूति कहीं भी अपनी कृतियो में कन्नौज और यशोवर्मा का संकेत नहीं करते हैं। श्री आनन्दराम बरुआ का कहना है कि" मैं फिर से कह सकता हूँ कि भवभूति कही भी कन्नौज के अस्तित्व के विषय मे भी नही कहते हैं। उनके नाटकों का कलाप्रियनाथ (महाकाल) के सामने अभिनीत होने से सिद्ध हैं कि वे उज्जयिनी से सबधित थे।" बरुआ का यह भी कहना है कि 'कवि वाक्पतिराज' मे वाक्पतिशब्द भवभूति

[1] —शारदारजनरे-उत्तर की भूमिका

की उपाधि है। किन्तु करमा का कथन नितान्त अनर्गल है। महाकवि कालिदास ने भी विक्रमादित्य का कोई कथन नहीं किया है। 'कवि' वाक्पति राज' की व्याख्या भी वेव्वर्थ में मनमानी करते है। यशोवर्मा की सभा में भवभूति का होना एक सिद्ध सिद्धान्त है।

३—जनश्रुति के अनुसार कालिदास और भवभूति को कुछ लोग समसामायिक स्वीकार करते थे। भवभूति को भी कालिदास के साथ *विक्रमादित्य की सभा का एक रत्न माना गया है। कथा इस प्रकार* है—कालिदास विक्रमादित्य की सभा के एक रत्न थे। एक दिन एक ब्राह्मण कालिदास के पास आया और उनसे *विक्रमादित्य से* भेंट कराने और राज्याश्रय दिलाने की प्रार्थना की। आगन्तुक महाशय कवि भवभूति थे उन्होंने अपने उत्तररामचरित को महाकवि को बड़े उत्साह और स्वर के साथ सुनाया। कालिदास अघमुनी सी दशामें सार भी खेलते जाते थे और सुनते भी जाते थे। जब भवभूति ने वाक्य समाप्त किया तब कालिदास ने भवभूति की बहुत प्रशंसा की और कहा कि यदि आप को स्वीकार हो तो १।२७ श्लोक की अन्तिम पंक्ति में एक अनुस्वार हटादें। ("रात्रिरेव व्यरमीत्") महाकवि के आदेशानुसार भवभूति ने कर दिया। भवभूति भी विक्रमादित्य की सभा के एक रत्न हो गए।

कालिदास भवभूति से पहिले के हैं, यह तो निर्विवाद सिद्ध ही हो चुका है। *सम्भवत कालिदास के ३७५—४७५ ई० के बीच के होने के* बारे में विद्वानों का बहुमत है[1] कालिदास का प्रभाव भवभूति के ऊपर *अत्यधिक है यह हम यथास्थान आगे सिद्ध करेंगे।*

भवभूति और कालिदास सम्बन्धी एक उल्लेख बल्लाल सेन विरचित भोज प्रबन्ध में भी पृ० १५६ में है। भवभूति को वाराणसी से आया हुआ कवि कहा गया है और जिन्हें भोज राज की सभा में स्थान दिया

1—प्रो० के० बी० पाठक, प्रो० बी० लीविश, डा० बी० एस० उपाध्याय

गया है। भोज प्रबन्ध मे भवभूति और कालिदास की तुलना कराई गई है। और कालिदास की श्रेष्ठता व्यक्त की गई है। किन्तु भोज की सभा मे कालिदास और भवभूति आदि का होना अनैतिहासिकता की पराकाष्ठा है। भाज क पूव पुरुष (चाचा) मु ज की सभा मे स्थित दशरूपक कार न भवभूति क श्लोकों को अपने ग्रन्थ म उद्धृत किया है। तव भवभूति कैसे भाज क समय म आ पिछड़ेंगे। भाज प्रबन्ध की अनैतिहासिकता तो सब विदित है।

प्राप्त प्रमाणो के आधार पर भवभूति बाणभट्ट के बाद के है। कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन ६०६=६४८ ई० तक शासन करते रहे है चीनी यात्री ह्वेनसांग न उनके राज्य क विषय म कई महत्वपूर्ण विवरण दिए हैं। महाकवि बाण हर्ष क सभाकवि थ। उन्होंने हर्षचरित नामक काव्य मे अपने आश्रयदाता की कीर्ति गाई हैं। इस पुस्तक का समय ६१० ई० है। बाण हर्षचरित की भूमिका मे भास, कालिदास और दूसरे अन्य प्रसिद्ध कवियो के साथ भवभूति का उल्लेख नही करते हैं। यदि भवभूति बाण के पूर्व के होते तो बाण ऐसे सहृदय महाकवि भवभूति का उल्लख भास कालिदासादि नाटककारो के साथ अवश्य करत। सभवत य दानो महाकवि समकालीन थे। भवभूति अपने समय के पूर्वार्धकाल म विशेष प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सके थे। इस समय तक बाण का हर्षचरित बन चुका था। भवभूति का उदयकाल और बाण का उत्तरार्धकाल एक ही रहा हागा, इसम सन्देह नही है। भवभूति बाण मे कुछ बाद के है।

कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार वामन काश्मीर नरेश जयापीड के मन्त्रि—मण्डल मे थे। इनका समय ८०० ई० है। वामन का उल्लेख राजशेखर और अभिनव गुप्त [1] आदि जो नवी शती ई० के है, करते हैं। वामन उत्तररामचरित के "इयं गेहे लक्ष्मी" श्लोक अपने

[1]——ध्वन्यालोक लोचन पृ० ३७

काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति में उद्धृत करते हैं. अतः भवभूति वामन से पहिले के हुए।

जैन साहित्य के अनुसार[1] जैन साधु बप्पाभट्टि ने यशोवर्मा के पुत्र आमराज को जैन बनाया जो गुजरात में था। बप्पाभट्टि का समय ८०७ विक्रम सम्वत् है। इससे सिद्ध होता है कि यशोवर्मा ८०७–८११ विक्रम सम्वत् के आसपास स्वर्गगत हुआ और भवभूति आठवीं शती में हुए सिद्ध होते हैं। किन्तु कन्नौज के यशोवर्मा के आमराज नाम का कोई पुत्र नहीं था, यह इतिहास से सिद्ध है।

महाकवि राजशेखर भवभूति को बड़े आदर और श्रद्धा के साथ उल्लिखित करते हैं। उनका कहना है[2] कि पूर्वकाल में जो बाल्मीकि भर्तृमेण्ठ हुए, वही भवभूति राजशेखर के रूप में अवतरित है। रामकथा के सम्बन्ध से यह सिद्ध है कि राजशेखर नाटककार भवभूति का ही उल्लेख कर रहे हैं जिन्होंने वीरचरित और उत्तररामचरित लिखा है। राजशेखर बालरामायण ४।४१ में भी भवभूति के महावीरचरित का उल्लेख करते हैं। राजशेखर अपनी सभी कृतियों में अपने को कन्नौज नरेश महेन्द्रपाल का आध्यात्मिक गुरु कहते हैं। महेन्द्रपाल के समय को सियादोनी[3]का शिलालेख ७०३–४ई० स्पष्ट रूप से कहता है। राजशेखर के उल्लेख में स्पष्ट सिद्ध है कि भवभूति के स्वर्गवास के बाद राजशेखर ने अवतार लिया है। अतः भवभूति का समय ७ वीं शती का अन्तिम भाग है। बाण ने कवि का उल्लेख नहीं किया है। माधवाचार्य के शंकरदिग्विजयानुसार भी भवभूति ७ वीं शती के हैं। कुछ भवभूति को ५ वीं शती का कहते हैं। अनर्घराघव और प्रसन्नराघव पर भवभूति के प्रभाव को देखकर उनका कहना है कि भवभूति राजशेखर से बहुत पहिले के हैं। बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया है। यह कोई बड़ी बात

१—'प्रबन्धकोश' राजशेखर

२—बालरामायण १। १६

३—कीलहार्न एपिग्राफिया १।१७१ काण्डिइ

नहीं है। बाण ने तो वाल्मीक का भी उल्लेख नहीं किया है। बरुआ भवभूति को कालिदास के समय के साथ पहुँचा देते है।

किन्तु बरुआ जी के कथन का खण्डन बाह्य साक्ष्यों के साथ साथ अन्त साक्ष्यों से भी हो जाता हैं।

१—भवभूति की शैली ५ वी शती की शैली से बहुत भिन्न और प्राग है। गुप्तयुग के शिलालेखों की शैली बहुत ही नैसर्गिक और सहज सौंदर्य से भरी हुई अकृत्रिम शाही हैं। यह शैली कालिदास की कला का भी मूलरूप हैं। बाद बाद कवियों और लेखकों न एक दूसरी ही शैली या ढाचा तैयार कर लिया, जिसमे कृत्रिमता और सजावट न नैसर्गिकता और सादगी का स्थान ले लिया है। लब समास, टेढे शब्द आलकारिता और अतिशयोक्ति इस शैली के सौन्दय के मापदण्ड हो गए। भवभूति की शैली इसी धारा की थी। गद्य म वे बाणभट्ट के पास स्पष्टत पहुँचे हुए हैं।[1] वे बाण के सामयिक या कुछ बाद के हैं पहिले के नहीं।

२—'विद्याकल्पेन मरुतो मघाना भूयसामपि—ब्रह्मणीव विवर्तानाम्०[2]' म विवर्तवाद की भ्रान्ति के आधार पर अद्वैतवाद का सिद्धात आचार्य शकर के पश्चात् विकसित हुआ है। भवभूति आचार्य के पीछे या समसमय म हुए हैं। भवभूति का वैदिक ज्ञान, वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति प्रेम और वैदिक शब्दावलि का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि वह 'वैदिक पुनर्जागरण काल ७वी शती के पहले के नहीं हो सकते हैं। बौद्ध धर्म के प्रति घृणा का भाव और वैदिक धर्म के प्रति पुन प्रेम आचार्य शकर के युग की देन है। भवभूति की कृति मालतीमाधव और विशाखदत्त का मुद्राराक्षस इसके प्रमाण हैं।

---

[1] मालतीमाधव के गद्यखण्ड प्राकृत मे

[2] उत्तर रामचरित ६/६

३—भवभूति से प्रयुक्त प्रचलाकिन् और मोकुलि आदि शब्द अमरकोश में नहीं हैं। अतः भवभूति अमरसिंह के उपरान्त हुए हैं। क्योंकि पीछे के कोशों में यह शब्द हैं।

इन सब प्रमाणों के आधार पर भवभूति ७वीं शती के अन्तिम भाग के सिद्ध होते हैं। रमेशचन्द्र दत्त 'एनशियन्ट इण्डिया' में लिखते हैं—

"भवभूति जो श्रीकण्ठ भी कहे जाते थे, विदर्भ में पैदा हुए किन्तु शीघ्र ही कन्नौज साम्राज्य में आगए। उनका प्रकृति प्रेम अद्वितीय और विशिष्टता वाला है। वह कवि कला और नाट्य कला के ज्ञाता थे। वह अधिक दिनों तक कन्नौज के यशोवर्मन का सुख न उठा सके। काश्मीर का ललितादित्य यशोवर्मन को हराकर उन्हें अपने साथ ले गया।"

भवभूति की कृतियां और उनका समय क्रमः—

महाकवि भवभूति के तीन नाटक महावीर चरित, उत्तर रामचरित और मालती माधव सर्वसाधारण में प्रसिद्ध हैं। विचार का विषय यह है कि क्या उन्होंने और कोई रचना की है या नहीं? इस प्रश्न के उपस्थित होने का कारण है—भवभूति के नाम से लगभग एक दर्जन पद्यों का सुभाषित ग्रन्थों में प्राप्त होना, जो लेखक के प्राप्त तीनों नाटकों में नहीं प्राप्त होते हैं।

शारङ्गधर[1] ने भवभूति के नाम से दो श्लोकों का उल्लेख किया है।

> 'निवद्धानि पद्यानि यदि नाटयस्य काव्यतिः।
> भिक्षुकचा विनिक्षिप्त. किमिक्षुर्नीरसो भवेत् ॥१॥
>
> 'अलिपटलैरनुयातां सहृदय हृदय ज्वरं विलम्पन्तीम्।
> मृगमदपरिमल लहरी समीर किं पामरेषु रे किरसि ॥२॥

[1]शारङ्गधर पद्धति, पीटर्सन संस्करण ७/२ पृ० १४६

इन श्लोकों मे से कोई भी श्लोक भवभूति के नाटकों मे नहीं मिलता है। इन दो श्लोको मे से प्रथम श्लोक—अन्य ६ श्लोको के साथ जल्हण ने अपनी सूक्ति मुक्तावली मे मालतीमाधव नामक लेखक के नाम म उद्धृत किया है। किन्तु निर्णय सागर के मालतीमाधव की सूक्ति विज्ञप्ति मे ऊपर के दो श्लोकों मे से द्वितीय पद्य शेष ६ पद्यों के साथ ले लिये गया है। जल्हण द्वारा उद्धृत ७ श्लोक सारंगधर ने अपनी पद्धति मे ले लिये हैं किन्तु एक पद्य को भवभूति के नाम से उद्धृत किया है। शेष पद्यों क लेखक के विषय मे वे मौन हैं। गदाधर भट्ट द्वारा सकलित 'रसिक जीवन' में भी भवभूति के नाम से दो पद्य उद्धृत हैं। एक तो "निसर्गानि पद्यानि०" और दूसरा "किं चन्द्रमा प्रत्युपकार लिप्सया क रोति गोभि कुमुदावबोधनम्। स्वभाव एवोन्नत चेतसा सता परोपकार-व्यसन हि जीवितम्॥[1]" जल्हण प्रथम सुभाषित सग्रहकार हैं जिनका समय १२४७ ई० है। इनकी बात अधिक विश्वसनीय है। जल्हण न भवभूति और मालतीमाधव दो पृथक, पृथक, लेखक स्वीकार किए हैं। उस प्राचीन युग मे ऐसे नाम के कवि होते भी थे। जैसे 'निद्रादरिद्र', उत्प्रेक्षावल्लभ, सौरकाररत्न इत्यादि। मालतीमाधव नामक कवि की कोई बड़ी कृति न होने से कुछ समय बाद लोग उन्हे भुला बैठे और जब मालतीमाधव के नाम से पद्य मिले तो भवभूति को मालतीमाधव समझकर उन पद्यों को भवभूति का कहने लगे। यही कारण है कि सूक्ति सग्रहों के बहुत से पद्य, जो भवभूति के नाम से उद्धृत हैं, भवभूति के नाटकों मे नहीं मिलते हैं। भवभूति ने अन्य कोई ग्रन्थ रचा है—इस सिद्धान्त को इन पद्यों के बल पर नहीं माना जा सकता है। डा० भाण्डारकर आदि[2] का भी यही कहना है।

उपर्युक्त विवेचन से य[illegible]थ्य निकला कि भवभूति रचित केवल तीन नाटक हैं, जो हमे सुल[illegible]। कोई कृति और भी हो सकती है, जो

---

[1] रसिक जीवन ३/६५ [2] मालतीमाधव—इन्ट्रोडक्शन

हमें आज प्राप्त नहीं है, किन्तु उसके संकेत भी प्रामाणिक रूप से हमारे पास नहीं हैं।

महावीरचरित कवि की प्रथम रचना है। इसमें कला और अभिव्यंजना दोनों निखार पर नहीं है। नाटकीयता का भी विकास नहीं हुआ है। भाषा, भाव, शैली और संविधान (टेक्नीक) सभी दृष्टियों से महावीरचरित प्रथम रचना सिद्ध होती है। राम के जीवन का पूर्वार्ध इसमें चित्रित है और उत्तरार्ध उत्तररामचरित में। इससे यह भी सिद्ध होता है कि महावीरचरित प्रथम रचना है और उत्तररामचरित द्वितीय। वीरचरित में कवि संकेत करता है। —

"प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीना
यत् पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाचस्तत्
सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्॥

'समरंसत' पद से सिद्ध होता है कि जब वीरचरित अभिनीत हुआ तब तक उत्तरचरित भी प्रायः पूर्ण हो चुका था। क्योंकि कवि की वाणी अब अधिक रामचरित में फंसी नहीं रहना चाहती थी। उधर उत्तर के भी अन्त में कवि कहता है —

"पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
माङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च।
वाल्मीकेः परिभावयन्त्व भिनयैर्विन्यस्त रूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविद परिणतप्रज्ञस्य वाणी मिमाम्॥[1]

जिससे सिद्ध होता है कि कवि श्रद्धा और भक्ति के साथ राम कथा का गान करना चाहता था। इसके लिए उसने नाटक का क्षेत्र चुना। पूरी रामकथा का गान कर चुकने के पहले ही वह मालतीमाधव प्रकरण में हाथ लगा देगा, ऐसी सभावना का स्थान नहीं है।

[1]—उत्तररामचरित, ७/२१—विद्यासागर संस्करण

डा० भाण्डारकर और उनके अनुकरण पर डा० वेलवलकर भी उत्तर-रामचरित को अन्तिम रचना स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि कवि जब प्रौढ प्रतिभा की चरमसीमा पर था तब उत्तररामचरित का प्रणयन उसन किया है। किन्तु प्रतिभा की प्रौढता और पूर्णता लेखन का अन्त नहीं करा देती प्रत्युत और भी आगे बढाती है। इससे वृद्धावस्था ही सूचित हो यह कोई सिद्धान्त नहीं है ज्ञान वृद्धत्व और प्रौढत्व वय की अपेक्षा नहीं रखता है। इससे सिद्ध होता है कि उत्तररामचरित के बाद कवि ने सामाजिक और लौकिक प्रकरण का निर्माण किया जो उसकी कल्पना शक्ति की उपज है।

वीरराघव, वेलवलकर आदि 'वाल्मीके" के स्थान पर "तामेता' और 'परिणतप्रज्ञस्य' के स्थान पर 'परिणतप्राज्ञस्य" पाठ देते हैं,[1] जिसके कारण उन्हें भ्रम हुआ है। परिणत प्रज्ञस्य और शब्दब्रह्मविद ये दोनो विशेषण महाकवि वाल्मीक के हैं, न कि भवभूति के। क्योंकि भवभूति शब्दब्रह्मविद् थे। वह तो प्रार्थना करते हैं कि —

विन्देम देवता वाचममृतामात्मन कलाम्[2]

विद्यासागर एक अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित प्रति जो उनके पास थी-के बल पर "वाल्मीके परिभावयन्तु" और 'परिणतप्रज्ञस्य' पाठ देते हैं। व्याकरण और तर्क की कसौटी पर ठीक है। क्योंकि (वाल्मीके' के स्थान पर 'तामेनाम्' पढने पर वाक्य ऐसे बनेगा— 'साइयं कथा ताम् एताम् इमावाणी परिभावयन्तु।' ये दो वाक्य है। इनमे 'सा' शब्द किसी प्रसिद्ध और परोक्ष वस्तु की ओर सकेत करता है और 'कवे परिणत प्रज्ञस्य' मे कवे शब्द अनुपस्थित वस्तु को सन्निधि हमारे मस्तिष्क के सामने प्रस्तुत कर देता है,-ऐसी दशा मे जब परोक्षता न रह गई और प्रसिद्ध पहिले सूचित ही है, (सा शब्द से) तो 'ताम्' का दूसरे वाक्य मे क्या प्रयोजन है? यह सिद्ध नहीं हो पाता और

---

[1]—उत्तर०७/२१ [2]—उत्तर ०१/१

वह चिन्त्य हो जाता है । साथ ही द्वितीय वाक्य म 'तामेनाम' म एत म को 'एव' अन्वादेश होजाना चाहिए था । क्योंकि ताम्, एनाम और इमाम एक ही अभिव्यक्त म मद्दे और कलाकार की कमी सूचित करते हैं। और वाक्य को भी असुन्दर करदेते हैं । जब हम बाल्मीके ' यह पाठ रखते हैं और वाक्य एसे बनेगा— साइय कथा । इमा वाल्मीक वाणी परिभावयन्तु' प्रत्येक सहृदय और विचारक यही पाठ उपयुक्त समझेगा । भाण्डारकर साहब का परिणताम आदि के बलपर उत्तर रामचरित को अन्तिम रचना सिद्ध करना असगत है और मालतीमाधव ही अन्तिम रचना सिद्ध होती है ।

मालती माधव की शैली उत्तररामचरित की अपेक्षा निर्मल और विशेष आकर्षक ही है । शैली स व्यक्ति की प्रौढता आकी जाती है शैली के मजने मे समय लगता है । वह आयु की वृद्धता के साथ २ अभ्यास स निखरती है । शैली का आकर्षक होना उसका सबसे बड़ा गुण है । मालती माधव की शैली उसे अन्तिमकृति सूचित करती है ।

उत्तररामचरित की प्रस्तावना म त्रुटि हैं जो मालतीमाधव म दूर कर दी गई है । सूत्रधार नान्दी आदि के पश्चात् कहता है—
"एषो ऽस्मि कार्यवशात् आयोध्यक "" सवृत्त (समन्तादवलोक्य) भो भो, यदा तावदत्र ।" यह भो भो अयोध्या नगरवासी कह रहा है, सूत्रधार ने जिसका ही प्रतिनिधित्व किया है । यह दोष पूर्ण है। क्योंकि प्रस्तावना 'सवृत्त' क साथ समाप्त हो जानी चाहिए । अबतो अक (दृश्य) प्रारंभ है । कवि के द्वारा अधिक सुन्दर ढग से रचना विधान यों हो सकता था—"एषोऽस्मि कार्यवशात् सवृत्त ।" (परिक्रम्य निष्क्रान्त) तत प्रविशति कश्चिदायोध्यक (समन्तादव लोक्य) भो भो । मालतीमाधव में कवि ने ऐसा ही किया है । नान्दी आदि के पश्चात्—'सूत्रधार — बाढम् । एषोऽस्मि कामन्दकी सवृत । नट —अहमप्यवलोकिता । (इतिपरिक्रम्य निष्क्रान्तौ) ॥ प्रस्तावना ॥

तत परिवृत्य रक्तपट्टिकनेपथ्ये कामन्दक्यवलोकिते प्रविशत' ।"

यह विधानक्रम ठीक है। उत्तररामचरित की त्रुटि मालतीमाधव में हटा दी जाने से सिद्ध है कि यह बाद की रचना है।

संस्कृत नाटककार परंपरा से सदा नाटक के प्रारंभ में दर्शकों के लिए एक या दो शब्द अत्यन्त नम्रता से अनुगृह और पक्षपात के लिए कहते थे। महावीर चरित में भवभूति कहते हैं—

"वश्यवान कवे. काव्यं सा च रामाश्रया कथा।
लब्धश्च वाक्य निष्यन्द निष्पेष निकषो जन ॥

इस पद्य में लेखक अपनी, अपने वस्तु और दर्शकसमुदाय की प्रशंसा करता है। वह प्रसिद्धि, अपनी योग्यता तथा अपेक्षित सहृदय प्रशंसा के प्रति ऊँची महत्वाकांक्षा रखता है। किन्तु उसका हास होता है। उत्तररामचरित में दर्शकों (सामाजिकों) की प्रशंसा आदि तो दूर रही वह कहता है—

'यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जन" । १/५

कवि की यह शब्दावली निराशा और अनुत्साह की सूचक है। वीरचरित की ऊँची महत्वाकांक्षा यहां नष्टप्राय सी है–क्योंकि जनता ने वीरचरित का आदर नहीं किया। यही कारण है कि कवि दर्शकों के प्रति अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं कहता है। वह पूरी सचाई और लगन से उत्तररामचरित की रचना में एकनिष्ठता से लगा हुआ है। किन्तु इसका भी परिणाम अनुकूल नहीं होता है। परिणाम स्वरूप मालतीमाधव में कवि अत्यन्त खीझ उठता है और ओज भरे स्वर से सामाजिकों को खरी खोटी सुना देता है—

'येनामकेचिदिहनः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तिते किमपितान् प्रतिनैष यत्न।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम्रकोऽपि समान धर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च धरणी ॥"१/८॥

कवि अपने और सामाजिकों के जन्म और अध्ययनादि के बीच अन्तर अभिव्यञ्जित करते हुए कहता है कि मेरा यश—

ते श्रोत्रियास्तत्व विनिर्दिचयाय–

भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।

इष्टाय पूर्ताय च कर्मणोऽर्थान्–

दारानपत्याय ततोऽथमायु ॥ [1]/७

सामाजिकों के प्रति उत्तरोत्तर कवि का बदलता दृष्टिकोण ध्यान देने योग्य है। वीर मे आदरसूचक, उत्तर मे उदासीन और अन्त म मालती मे क्रोधपूर्ण।

कुछ लोगों का यह कहना कि वीरचरित मे अनुकूल प्रशसा न मिलने से द्वितीय रचना मालतीमाधव मे कवि क्रोधित हो उठा है। किन्तु यह धारणा ठीक नही, क्योंकि प्रथम प्रयास मे असफल होने पर कोई इतना क्रोधित नही हो सकता है। हा वह कुछ उदासीन हो सकता है। मालतीमाधव की प्रशसा यदि द्वितीय उद्योग मे होगई होती तो कवि कभी भी उत्तररामचरित मे सामाजिकों के प्रति उदासीन न होता, प्रत्युत क्रोधित दृष्टिकोण म परिवर्तन कर पुन प्रशसा करता, जैसा कि परपरा थी। साथ ही यदि मालती की भी प्रशसा सहृदय न कर सके होते तो उत्तर में लेखक को और भी भयानकता के साथ दर्शको पर या पाठकों पर प्रहार करना था। किन्तु ऐसा नहीं हुआ जिससे सिद्ध होता कि उत्तररामचरित द्वितीय रचना और मालतीमाधव अन्तिम रचना है।

भरतमुनि का कहना है कि जिस प्रकार अगो से रहित मनुष्य युद्ध आरम्भ करने मे असमर्थ होता है उसी प्रकार अगो से रहित काव्य प्रयोग योग्य कभी नहीं हो सकता। जो काव्य हीन अर्थ वाला भी हो किन्तु उचित रूप मे अगो से युक्त हो तो प्रदीप्त अगो के कारण ही शोभा को प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई सदेह नही। यदि कोई काव्य उच्च कोटि के अर्थ वाला भी हो किन्तु अगों से रहित होने पर प्रयोग हीनता के कारण सहृदयों के मन प्रसादन मे वह समर्थ नहीं होता है।

---

[1]—ना०शा० १८/५५-५८

अतएव कवि को चाहिए कि रस और सविधान के अनुसार उचित रूप सन्ध्यगों का प्रयोग अवश्य करे।' भवभूति का उत्तररामचरित उच्चतम अर्थ और भाव वाला होने पर भी नाट्य नियमों–सन्ध्यगो आदि के प्रति उपेक्षा रखने के कारण जनप्रिय न हो सका। क्रान्तिकारी कवि, जिसने हर्ष आदि की शैली के प्रति विरोध करके नाट्य नियमों से स्वतन्त्र नैसर्गिक नाटक रचना की थी ,परंपरा की अभ्यासिनी जनता के प्रति क्षुभित हो उठा और मालती मे उसने अपने क्रोध को स्पष्ट शब्दों प्रकट कर दिया।[1] इसके पश्चात् उसने अपनी इस कृति मे सन्ध्यगो, अर्थप्रकृतियो ,कार्यावस्थाओं आदि सभी का सम्यक् विधान किया है। वस्तु भी कल्पनाप्रसूत रोमान्टिक ली है। परिणाम आशा के अनुकूल हुआ और कवि जनता मे प्रसिद्ध होगए। राजशेखर और वाक्पतिराज की उक्तिया इसमे प्रमाण हैं।

कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार काश्मीर नरेश ललितादित्य कन्नौज नरेश यशोवर्मा को हराकर भवभूति को अपने साथ ले गया था। उसने ललितपुर मे आदित्य (मार्तण्ड) मन्दिर बनवाया और कन्नौज की प्राप्त सपत्ति को उस मदिर को दान मे दे दिया। भवभूति ने मालतीमाधव के प्रारभ मे आदित्य की प्रार्थना उनके वैभव वर्णन के साथ की है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् अब हम भवभूति के तीनो नाटको मे प्राप्त समान श्लोको और वर्णन स्थलो पर विचार करेंगे कि कौन से पद्य और स्थल प्रथम निर्मित हुए और वहाँ से दूसरे ग्रन्थ मे रखदिए गए। इस प्रकार भी ग्रन्थो के रचना क्रम का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो जायगा।

महावीर चरित, उत्तररामचरित और मालती माधव के ३१ पद्य समान रूप से सभी मे प्राप्त होते हैं। जिनमे १३ पद्य महावीर और उत्तर चरित मे समान रूप से हैं और १८ पद्य उत्तररामचरित और

---

[1]—मा०मा० १/८

मालतीमाधव में समान रूप से हैं। महावीरचरित और मालतीमाधव का कोई भी पद एक दूसरे में नहीं मिलता है। केवल दो श्लोक ऐसे हैं जो तीनों ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

विचार का विषय यह है कि कवि ने किस ग्रन्थ से पद्य उठाकर दूसरे ग्रन्थ में रखा गया है? एक लेखक के द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थों में समानता का प्राप्त होना स्वाभाविक है किन्तु जहाँ पर कोई वस्तु बलात् दूसरे स्थान से किसी दूसरे स्थान पर भी पहुँचा दी जाती है तो उसका ज्ञान छिपा नहीं रहता है क्योंकि पूर्व स्थान में वह अपनी नैसर्गिकता के कारण उपयुक्त प्रतीत होती है, जबकि दूसरे स्थान पर वह स्वाभाविक और उपयुक्त नहीं प्रतीत होती है।

महावीरचरित और उत्तररामचरित के समान श्लोक महावीर चरित में विशेष उपयुक्त स्थलों में हैं तथा उत्तररामचरित और मालती माधव में एक समान प्राप्त होने वाले पद्य तो उत्तररामचरित में ही ठीक स्थानों पर स्वाभाविकता के साथ हैं। मालती माधव में तो वे खटकते से लगते हैं। महावीर चरित के श्लोकों की समानता उनकी रचना समीपता और उत्तर रामचरित और मालती माधव के पद्यों की अधिक समानता इनकी रचना समीपता को व्यक्त करती हैं। महावीर-चरित कवि की प्रारम्भिक रचना है इस पर किसी भी विचारक को विवाद नहीं अतः मालतीमाधव अन्तिम रचना है इस तथ्य पर भी किसी को आक्षेप न होना चाहिए।

मालती माधव के नवम अङ्क का पर्वत वर्णन उत्तर के गोदावरी तीर के पर्वत वर्णन के पूर्व रचित होने की स्पष्ट सूचना देता है[1]। "स्मरन्ति गोदावरी सुरभित सुधा दक्षिणारण्य नृपम् ......।" उत्तररामचरित का वर्णन उपयुक्त और स्वाभाविक है। मालती माधव में उसी पद्धति और ढंग पर यह वर्णन अनुपयुक्त और अस्वाभाविक है। उत्तर रामचरित के करुण रस का प्रभाव मालती माधव के ऊपर

[1]—मा० मा० ९/३१ के बाद का गद्य पृ० २०५। निर्णयसागर

शृंगार रस का नाटक होने पर भी सर्वत्र छाया हुआ है। माधव विरह और सीता राम के समान ही है। अतः मालती माधव उत्तर रामचरित से बाद की रचना है इस यहाँ पर पाठकों के लिए कृतियों में समानता के साथ प्राप्त पदों का उल्लेख किए देते हैं।

अध्याय ३

६. भवभूति कृत ग्रन्थ-त्रयगत सदृश पदसंग्रह

महावीर चरित और उत्तररामचरित

१ विश्वामित्र—
तेषामिदानीं दायादो वृद्धः सीरध्वजो नृपः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्म पारायणं जगौ ।।म० च० १/१४

अरुन्धती—
एष च श्लाघ्य सम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्म पारायणं जगौ ।। उ० च० ४/६

२ राजा—
चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतः।
भस्मस्तोक पवित्र लाञ्छनमुरोधत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकम्।
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः ।।म०च०१/१८

जनक—
यही श्लोक ज्यों का त्यों उ० च० ४/२०

३ विश्वामित्र—
अपिप्रवृत्तयज्ञोऽसौ विदेहाधिपतिः सुखी।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः ।। म० च० १/१६

लक्ष्मण—
सर्वर्षिनो वशिष्ठाग्नेर्नियमातस्तवागति ।
गौतम उ०च० ४/२०
४ विश्वामित्र—
ब्रह्मान्यो ब्रह्महिताय तप्त्वा परस्सहस्त्रं शरदां तपांसि ।
एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ॥
म० च० १/४७
राम—
यही श्लोक ज्यों का त्यों उ० च० १/१५, ६/१५
५ राजा—
जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः ।
यत्र दाता गृहीता च कल्याणप्रतिभूसवान् ॥ म० च० १/४७
राम—
.. ..
.. .. .. स्वयं कुशीकनन्दनः ॥ उ० च० १/१७
६ जामदग्न्य—
त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः ।
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै ।
सामर्थ्यानामिव समुदयः संचयो वा गुणानाम्
प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः ॥ म० च० २/४१
राम—
...... ज्यों का त्यों केवल 'आविर्भूय' ॥ उ० च० ६/९
७ जामदग्न्य—
अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते ।
कुठारः कम्बुकण्ठस्य कष्टं कण्ठे पतिष्यति ॥ म० च० २/४६
राम—
... ... ।
परिष्वङ्गाय वात्सल्यादयमुत्कण्ठते जनः ॥ उ० च० ६/२१

८ जनक—
ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटि दंष्ट्र-
मुन्मारिघोरघन घर्घरघोषमेतत् ।
ग्रास प्रसक्त हसन्निव वक्त्रयन्त्र
जृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम् ॥म० च० ३/२९
लव—
ज्यों का त्यों मुद्रमूति केवल परिवर्तित है । उ० च० ४/२६
९ दशरथ—
निसगत पवित्रस्य किमन्यत् पावन तव ।
तीर्थोदक च वह्निश्च नान्यत शुद्धिमर्हत ॥ म० च० ४/२७
राम—
उत्पत्ति परिपूताया किमस्या पावनान्तरै ।
तीर्थो ज्यों का त्यों .. ॥ उ० च० १/१३
१०—विश्वामित्र—
किं त्वनुष्ठान नित्यत्व स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
संकटा ह्याहिताग्नीना प्रत्यवायै र्गृहस्थता ॥ म०च०४/३३
राम—ज्यों का त्यों ॥ उ०च० १/८
११—जनक—
पुत्र सङ्क्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम् ।
त्वयात्तनीर कण्ठेन प्राप्तमारण्यक व्रतम् ॥ म०च०४/४१
लक्ष्मण— " " ।
धृत बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यक व्रतम् ॥ उ०च०१।२२
१२—जटायु—
चतुर्दश सहस्राणि चतुर्दश च राक्षसा ।
त्रयश्च दूषण खर त्रिमूर्धानो रणे हता १ ॥ म०च०५/१३
शम्बूक—ज्यों का त्यों " " ॥ उ०च० २/१५

१६—श्रमणा—

इह समदशकुन्ता क्रान्तवानीर मुक्त
प्रसव सुरभि शीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फल भर परिणाम श्याम जम्बू निकुंज
स्खलन मुखर भूरिस्त्रोतसो निर्झरिण्य. ॥ म०च०५/४०

और भी

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूक यूनाम्
अनुसरति गुरूणि स्यान मम्बूकृतानि।
शिशिरकटुकषाय: स्त्यायते सल्लकीनाम्
इभदलित विशीर्ण ग्रन्थिनिष्यन्द गन्ध ॥ म०च० ५/४१

शम्बूक—ज्यों का त्यों दोनों पद्य - केवल विवर्ण ॥ उ०च०२/२०,२

सौदामिनी—दधति कुहर . ज्यों का त्यों। मा०मा०९/३

माधव—

फलभर परिणाम श्याम जम्बू निकुंज।
स्खलन ननु तरंगामुत्तरेण स्रवन्तीम्॥ मा०मा० ६/२४

नोट—केवल यही स्थल म०च०, उ०च० और मा०मा० के सदृश हैं। नहीं तो म०च० का कोई भी अंश मा०मा० में नहीं प्राप्त होता है।

उत्तर रामचरित और मालतीमाधव—

१—राम—

नैसर्गिकी सुरभिण: कुसुमस्य सिद्धा।
मूर्ध्निस्थितिर्नचरणैरवताडनानि॥ उ०च० १/१४
माधव······ मुसलैर्वलकुट्टनानि॥ मा०मा० ६/५१

२—राम—

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्ष पक्षा
व्याधूत स्फुर दुरु दण्ड पुण्डरीका:।
बाष्पाम्भ: परिपतनोद्गमान्तराले
संदृष्टा कुवलयिनो मयाविभागा:॥ उ०च० १/३१

मकरन्द ...... ज्यों का त्यों ...अन्तिम चरण में

दृश्यन्ताम विरहितश्रियो विभागाः ॥ मा॰मा॰ ९/१४

३—राम—

जीवन्निव ससाध्वसश्रम स्वेदबिन्दुधि कण्ठमर्प्यताम्
बाहु रैन्दवमयूख चुम्बित स्यन्दिचन्द्रमणि हारविभ्रमः ॥
उत्तर०१/३४

माधव—जीवन्निव समुद्साध्वमस्वदे... ।
... ...ज्यों का त्यों ... ॥ मा॰मा॰८।३

४—राम—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि–
संतर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि–
कर्णामृतानिमनसश्च रसायनानि ॥
उत्तर०१/३६

माधव— ... ... ज्यों का त्यों ... ।
आनन्दनानि हृदयैक रसायनानि दिष्ट्या–
मयाप्यधिगतानि वचोऽमृतानि ॥
मा॰मा॰६/८

५—शम्बूक—

गुञ्जत्कुञ्ज कुटीर कौशिक घटाघुत्कारवत्कीचक–
स्तम्बाडम्बर मूक मौकुलिकुलः क्रौञ्चाभियोऽयं गिरिः ॥
उत्तर०२/२६

माधव—

गुञ्जत्कुञ्ज कुटीर कौशिक घटाघूत्कार संवेल्लित–
क्रन्दत्फेरव चण्डधात्कृतिभृतप्राग्भारभीमैस्तटैः ॥
मा॰मा॰५/१६

६—तमसा—

परिपाण्डु दुर्बलकपोलसुन्दरं दधतीविलोल कवरीकमाननम् ॥
उत्तर०३/४

कामन्दकी—

परिपाण्डुपांसुलकपोलमाननदधती मनोहर तरलत्वमागता ॥

मा०मा०२।४

७—राम—

लीलोत्खातमृणाल काण्ड कवलच्छेदेषु संपादिता.
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूष सक्रान्तय ।
सेक: शीकरिणाः करेणविहित: कामंविरामे पुन:
यत्स्नेहादनरालनालनलिनी पत्रातपत्र धृतम् ॥

माधव-तत्स्नेहाद् केवल ज्यों का त्यों है ॥ मा०मा०६।३४

८—राम—

उत्तर०

दलतिहृदयं शोकोद्वेगाद्विधातु न भिद्यते
वहति विकल:कायो मोहं नं मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाह.करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥

उत्तर०३।३१

माधव-दलति हृदयं गाढोद्वेगम् ''' शेष ज्यों का त्यों ॥

मा०मा०६।१२

६—राम—

हा हा देवि स्फुरति हृदयं ध्वसते देहबन्ध:
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धेतमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ् मोह स्थगयति कथं मन्दभाग्य: करोमि ॥

उत्तर०३।३८

मकरन्द-मातर्मातर्दलति'''''' जगदविफल० ।
शेष ज्यों का त्यों ''' ॥मा०मा०६।२०

१०—तमसा—वासन्ती—

तवचितरतु भद्रं भूयसे मंगलाय ॥ उत्तर०३।४८

सूत्रधार—

भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मंगलाय ।। मा०मा०१।५

११—जनक—

अनियत रुदित स्मितं विराजम्
कतिपय कोमल दन्त कुड्मलाग्रम् ।
वदन कमलकं शिशोः स्मरामि
स्खलदसमञ्ज समञ्जु जल्पितं ते ॥ उत्तर०४।४

कामन्दकी—

शेष ज्यों का त्यों केवल सुमुग्ध ।। मा०मा०१०।२

१२—कञ्चुकी—

सुहृदिव प्रकट्य सुखप्रदाम्
प्रथममेक रसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्ड विवर्तन दारुणः
परिशिनष्टि विधिर्मनसोरुजम् ॥ उत्तर०४।१५

माधव—

सारा ज्यों का त्यों केवल प्रविशिनष्टि ।। मा०मा०४।७

१३—चन्द्रकेतु—

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च
प्रणिहितम पिचक्षुर्ग्रस्त मुक्तं हिनस्ति ।। उत्तर०५।१३

मकरन्द—"""ज्यों का त्यों"   ।

क्षणमुपहत चक्षुर्वृत्तिरुद्भूय शान्तः ।। मा०मा०६।५४

कामन्दकी—""" "ज्यों का त्यों" ॥ मा०मा०१०।८

१४—राम—

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः
न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ उत्तर० ६।१२
मकरन्द—"ज्यों का त्यों" ॥ मा० मा० १।२७

१५—भागीरथी—

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुः
द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ॥ उत्तर० ७।४
माधव—"ज्यों का त्यों" ॥ मा० मा० १०।१३

चतुर्थ अध्याय

७ भवभूति की कथावस्तु के स्रोत और रामकथा

महा कवि भवभूति ने अपने नाटकों के लिए इतिहास प्रसिद्ध कथानक राम कथा को चुना है। कवि के महावीर चरित और उत्तर रामचरित इन दोनों की कथा वस्तु ऐतिहासिक है और मालती-माधव की कवि कल्पित। भवभूति महावीर चरित मे स्पष्ट कहते हैं—

'प्राचेत सो मुनिवृपा प्रथम' कवीनायत्
पावन रघुपते प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तत्र समरंसत मे ऽपि वाच स्तत्
सुप्रसन्न मनस कृतिनो भजन्ताम्॥

तथा उत्तर के भी अन्त मे—

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयतिच श्रेयांसि सेयंकथा
माङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गंगेव च।
वाल्मीके परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधा
शब्दब्रह्म विद. परिणतप्रज्ञस्य वाणी मिमाम्॥

कवि राम कथा के प्रति श्रद्धा से पूर्ण है और आदि कवि की ओर उसके सुस्पष्ट संकेत हैं। भवभूति के कथानक का मूलाधार रामायण महाकाव्य है इसमे संदेह नही है। मुरारी कवि का कहना वस्तुत. यथार्थ है—

"अहो सकलक विसर्थ साधारणी
खल्विय वाल्मीकीया सुभाषिता" ।"

किन्तु उत्तर रामचरित के कथानक में पद्मपुराण के पातालखण्डस्थ रामकथा का पूर्ण प्रभाव है, जिसके कारण कवि उत्तर

के कथानक के लिए उसका ऋणी है। कवि के नाटकों की कथावस्तु और घटना चक्र तथा दृश्य विधान आदि में भास और कालिदास की कृतियों तथा महाकाव्यों का बहुत प्रभाव है, जिसका हम क्रमश विवेचन करेंगे। अभी हम कवि के कथानक के राम कथा सम्बन्धी पक्ष पर विचार करेंगे। भवभूति पहिले नाटक कार हैं जिन्होंने पूरी राम कथा को नाटकीय साँचे में ढाल कर वह प्रमुखता प्रदान की है कि जिसके प्रभाव से — कुन्दमाला, बालरामायण, प्रसन्नराघव, अनर्घराघव, हनुमन्नाटक आदि न जाने कितने नाटक निर्मित हुए।

राम कथा का इतिहास[1]—

भारत में वाल्मीकि रामायण के चार संस्करण प्रचलित हैं। १-उत्तरी भारत का संस्करण २-बंगाली संस्करण, ३-पश्चिमी संस्करण ४-दक्षिणी संस्करण। इन सभी संस्करणों में मूलकथानक में कोई भी विभेद नहीं है केवल श्लोकों और सर्गों के विषय में अन्तर है। इन संस्करणों में कौन सा संस्करण सबसे प्राचीन है, यह नहीं बताया जा सकता है। रामायण में बहुत से अंश बाद के जोड़े हुए हैं जो कहीं २ पुनरुक्ति सी करके अपने को प्रकट कर देते हैं तथा उनकी रचना शैली से भी उनकी प्रक्षिप्त अंशता सिद्ध हो जाती है। हम बंबई संस्करण से विवेचन करेंगे।

कथानक का जहा तक सम्बन्ध है भवभूति का रामायण विषयक ज्ञान आज की सुलभ रामायणों से अन्तर नहीं रखता है।

वाल्मीकीय रामकथा— कौशल देश की राजधानी अयोध्या में राजा दशरथ राज करते थे। उनके वंश में मनु, इक्ष्वाकु, सगर, भगीरथ, काकुत्स्थ और रघु ऐसे प्रसिद्ध प्रतापी नृपति हो चुके थे। दशरथ की तीन रानियाँ कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी थीं।

---

[1]—इसके लिखने में डा० फादर कामिल बुल्के के निबंध रामकथा और डा० वेलवल्कर के उत्तर रामचरित के इन्ट्रोडक्शन हार्वर्ड सीरज से सहायता ली गयी है।

कौशल्या सब से जेठी और कैकेयी सबसे अधिक प्यारी थीं। दशरथ ने बहुत दिनों तक समृद्धि के साथ शासन किया । उनके एक पुत्री शन्ता थी, जो ऋष्यश्रृंग को व्याही थी — अपने मित्र लोमपाद को पालन के लिए दे दिया था। शान्ता किस माता से पैदा हुई थीं, इसका उल्लेख नहीं है। राजा के कोई पुत्र न था और वे अत्यन्त वृद्ध थे। कुलगुरु वशिष्ठ के कथनानुसार उन्होंने ऋष्यश्रृंग के नेतृत्व में पुत्रेष्टि यज्ञ किया। जिसके फलस्वरूप उनके चार पुत्र हुए। कोशल से पूर्व की ओर विदेह जनक का राज मिथिला था। जनक बडे ब्रह्मज्ञानी थे एक बार उन्होंने यज्ञ के लिये पवित्र भूमि की रचना करते हुए हल से पृथ्वी जोती। जिसके फलस्वरूप सीता का जन्म हुआ । सीता धरती की पुत्री थी जनक ने बडे प्यार से उनका लालन पालन किया। सीता जनक की पुत्री उर्मिला और जनक के भाई कुशध्वज की पुत्री माण्डवी एव श्रुतिकीर्ति के साथ बढीं। सीता जब विवाह योग्य हुई तो जनक ने स्वयवर रचा, जिसमे यह घोषणा की गई कि जो शक्तिशाली पुरुष शिव धनुष को तोड डालेगा उसी से राजकुमारी का विवाह होगा। भारत के नरेशों ने पूरी शक्ति भर प्रयत्नशीलता दिखाई पर सफलता किसी को नही मिली। एक दिन राजा दशरथ की राजसभा मे राजर्षि विश्वामित्र पधारे। वे निशाचरो से पीडित थे और अपने यज्ञ के रक्षणार्थ राम और लक्ष्मण को जो दशरथ के जेठे पुत्र थे लेने आये थे। विश्वामित्र का स्थान साधारण न था। दशरथ को बिना अपनी इच्छा के दोनों पुत्र मुनि के साथ भेजने पडे। राम और लक्ष्मण ने जाकर ताडका और सुबाहु के साथ राक्षसों का सहार किया तथा मारीच को समुद्र पार फेंक दिया विश्वामित्र जी का यज्ञ पूरा हुआ। उन्होंने राजकुमारों के ऊपर प्रसन्न होकर सभी अस्त्र शस्त्र विद्यायें जो मन्त्रों से प्रयोग में आती थीं, सिखा दीं, जिनमे जृम्भास्त्र प्रमुख थे। राम लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र मिथिला गये। राजा जनक राजकुमारों को देखकर

तथा उनकी वीरता सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। विश्वामित्र जी की आज्ञा से राम ने धनुष को तोड़ डाला और सीता जी से उनका विवाह हो गया। विश्वामित्र के आदेशानुसार जनकों ने शेष तीनों लड़कियों का विवाह दशरथ के शेष तीनों राजकुमारों से कर दिया। दशरथ अयोध्या से, सूचना भेजकर इस अवसर के लिए बुला लिये गए थे। किन्तु यह आनन्द जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी के आने से दूर हो गया। वे अत्यन्त क्रोधी और इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कर चुकने वाले थे। वे शिव भक्त थे और अपने गुरु के धनुष को राम द्वारा त्रुटित सुनकर प्रतीकार लेने आए थे। किन्तु एक साधारण युद्ध विद्या प्रदर्शन से राम ने उन्हें प्रसन्न कर दिया और वे वन को लौट गए। चारों राजकुमार राजकुमारियों को लेकर अयोध्या आ गए और १४ वर्ष तक यौवन सुख भोगते रहे। बालकाण्ड यहीं पर समाप्त हो जाता है। रामायण के कुछ संस्करण राम के जनकपुर से लौटते ही वन-गमन घटना आयोजित कर देते हैं, किन्तु भवभूति और पद्मपुराण का पातालखण्ड यह नहीं स्वीकार करते हैं।

दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को इस समय उपयुक्त अवसर समझकर युवराज पद देने का विचार करने लगे और घोषणा कराके तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। किन्तु कैकेयी दासी मन्थरा के बहकावे में आकर राजा द्वारा प्रदत्त दो वर लेने का विचार कर उनमें से एक में—अपने पुत्र भरत के लिए युवराज पद और दूसरे में राम के लिए १४ वर्ष का वनवास राजा से मांग लिया। राजा को कैकेयी के वचनों का विश्वास न हो रहा था, किन्तु राम ने परिस्थिति समझकर स्वयं वन मार्ग पकड़ा। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण भी वन को चले। दशरथ ने भी राम के वनगमन के साथ ही स्वर्ग का मार्ग पकड़ा।

भरत जो कि अयोध्या में घटी इन घटनाओं से अपरिचित थे, अपनी ननिहाल में थे वे अयोध्या बुलाए गये और उनसे, पिता के

सभी सरकार करने तथा राज्य स्वीकार करने के लिए कहा गया किन्तु जब उन्हे सब बातें और अपनी माता की करतूत का पता चल जाता है, तो वे अत्यन्त दुखित होते हैं और पूर्णतया राज्य का लेना अस्वीकार करके, राम को ढूढने के लिए वन को चल देते हैं। उनका ध्येय था राम को लौटाकर राज्य गद्दी सौंप देना। भरत राम को प्रयाग के आगे चित्रकूट मे बनवासी का जीवन व्यतीत करते पाते हैं। भरत इन तीनो की दशा देखकर विमूढ हो उठते हैं। राम को भरत को देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता। किन्तु राम बहुत कहने सुनने पर भी अयोध्या बिना १४ वर्ष पूरे किए लौटना उपयुक्त नही समझते हैं और तब तक भरत को राज्य भार समालने की आज्ञा देते हैं। जनता की भलाई के लिए भरत राम के प्रतिनिधि के रूप अयोध्या का शासन समालते हैं। अयोध्या काण्ड समाप्त।

इसके बाद राम चित्रकूटसे दक्षिण के घनघोर जगलो मे प्रवेश करते हैं। उन्होंने विन्ध्य के उसपार राक्षसो के जमघट सुनकर उसी ओर को प्रस्थान किया। विन्ध्य मे घुसते ही उन्हे विराध राक्षस मिला जिसे उन्होंने मिलते ही मार दिया। इसके बाद बहुत से ऋषियों और मुनियो से मिले। इस तरह से वनवास के उनके १० वर्ष व्यतीत हो गये। डा० वेलवलकर का कहना है कि यह ठीक नहीं है क्योंकि यदि १० वर्ष उनके पहिले ही व्यतीत हो गये गोदावरी के किनारे पहुंचने के, तो पचवटी में वे कुछ दिनों के लिए कुटी न बनाते जबकि अभी तक नहीं बनाई थी। वे पद्मपुराण की बाते मानते हैं जिसमे १० वर्ष पचवटी में बिताने के लिए कहा गया है[1]। इसके बाद राम और दक्षिण की ओर बढते हुए गोदावरी के किनारे पहुंचते हैं। वहां पर जन स्थान मे अगस्त्य, लोपामुद्रा और गृध्रराज जटायु के समीप, प्रस्रवण पर्वत के तट पर पचवटी में कुटी बनाकर रहने लगे। राम अपनी धर्मपत्नी और भाई के साथ शान्ति का जीवन व्यतीत कर रहे थे, किन्तु उनकी शान्ति

[1]–पद्मपुराण ६/२६९

चिरस्थायी न हो सकी। राक्षस राज रावण जो लंका का अधिपति था, तथा संसार भर में आतंक फैलाए हुए था, जिसका जन स्थान में उपनिवेश था और खरदूषण तथा त्रिशिरा की अध्यक्षता में १४ सहस्र निशाचरी सेना जो जनस्थान में रक्खे था–उसकी विधवा बहिन शूर्पणखा पंचवटी में राम के पास आई और मोहित होकर विवाह के लिए प्रार्थना करने लगी। राम ने उसे अनुज लक्ष्मण के पास भेजा और संकेत से उसकी नाक और कान कटवा डाले। वह रोती हुई खरदूषण आदि के पास गई, और पूरी राक्षसी सेना को आक्रमण के लिए लिवा लाई। राम और लक्ष्मण ने राक्षसों का समूल संहार कर डाला। राम धनुष में बाण बैठाने के लिए इस युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे। शूर्पणखा भाग कर रावण के पास गई और सीता के सौन्दर्य का वर्णन कर सीता के प्रति रावण के हृदय में कामवासना जगा दी। रावण सीता को अपने आधीन करने के लिए मारीच के पास पहुँचा और उसे कंचन मृग बना कर साधु वेश में पंचवटी जाकर, राम के कनक मृग के पीछे मारने के लिए दौड़ पड़ने पर अकेली सीता का बलात् हरण कर लिया। लक्ष्मण को सीता ने राम की सहायता के लिए भेज दिया था। रावण के मार्ग में जटायु बाधक बना किन्तु मारा गया। राम और लक्ष्मण ने लौटकर कुटी को सीता से शून्य देखा। राम अत्यन्त दुखित हुए। अरण्यकाण्ड समाप्त हुआ। सीता को ढूढ़ते हुए राजकुमार पंपासर के पास पहुंचे। यहां हनुमान के द्वारा सुग्रीव(वानरराज)से उनकी मित्रता हुई। सुग्रीव वानर राज बाली के द्वारा स्त्री और राज्य छीन लिए जाने से उसके डर से यहां रहता था। राम ने सुग्रीव के लिए बाली को मारा और सुग्रीव को उसकी स्त्री तथा राज्य वापस लौटा दिया। बाली को राम ने अप्रत्यक्ष मारा था। सुग्रीव ने राम की कृपा के बदले में वानर सेना को सभी दिशाओं में सीता की खोज करने के के लिए भेजा विशेष कर अंगद, हनुमान और जाम्बवान को दक्षिण दिशा में भेजा, क्योंकि जटायु ने प्राण छोड़ते २ राम से रावण की करतूत प्रकट कर दी थी। किष्किन्धा काण्ड समाप्त।

रावण की राजधानी लंका का रक्षक समुद्र था। हनुमान लका को लाघ गए। ल का म अशोकवाटिका मे सीता से हनुमान की भेंट हुई। अशोक वृक्ष के नीचे कृशकाय सीता को रावण तथा राक्षसियाँ सता करके, धमका करके वश में करने का प्रयत्न करती थी किन्तु वे तो पतिव्रता थी। उनकी ओर ध्यान तक भी नही देती थी। उनके न रहने पर हनुमान सीताको राम प्रदत्त मुद्रिका देकर रामका पूरा सदेश कहते हैं और उनसे चूडामणि लेकर अक्षमकुमारादि राक्षसो को मारकर लका मे आग लगा वापस लौट आते हैं। सुन्दरकाण्ड समाप्त।

राम सीता का समाचार पाकर शीघ्र ही लका पर आक्रमण के लिए चल देते है। उनके साथ मे ऋक्षवानरों की सेना है। पूरी सेना के साथ राम समुद्र के किनारे पहुचते हैं और नलनील के द्वारा समुद्र में सेतु का निर्माण कराते हैं। लका पर चढाई होती है और युद्ध मे ससैन्य रावण का सहार होता है। रावण का भाई विभीषण राम के पक्ष मे चला आया था। इस युद्ध की दिन सख्या मे सभी सस्करणो मे मतभेद है। विभीषण लका के राजा होते हैं और सीता राम को प्राप्त होती है। राम जनता के विश्वास के लिए सीता की अग्नि परीक्षा लेते हैं जिसमे सीता खरी उतरती हैं और राम सीता को सहर्ष स्वीकार करते है। राम को तो सीता पर सदा विश्वास रहा है केवल जनता के लिए यह क्रम किया गया था। अबतक १४ वर्ष पूरे हो चुके थे। अत राम, लक्ष्मण, सीता तथा सारी सेना ने पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। अयोध्या मे वे सभी से मिलकर भेंटे जो उनकी बाट जोह रहे थे। राम का राज्याभिषेक हुआ। युद्ध काण्ड समाप्त। आनन्द की समष्टि के साथ साथ प्रबन्ध काव्य यहाँ समाप्त हो जाता है। किन्तु राम के उत्तर कालीन जीवन सबन्धित उत्तरकाण्ड शेष है। राज्याभिषेक के कुछ महीनों बाद जनता में सीता के विषय मे अपवाद की चर्चा फैली। जब राम को चरों से यह ज्ञात हुआ तो उन्होने सीता के परित्याग का

निश्चय किया और लक्ष्मण को आज्ञा दी कि सीता को ले जाकर गंगा के उसपार वन में छोड़ आओ। वहाँ उन्हें सब बता देना। यद्यपि सीता इस समय पूर्ण गर्भा थी। लक्ष्मण ने आदेश का पालन किया। सीता ने लक्ष्मण से लौटते समय राम के लिए एक मार्मिक संदेश दिया और करुण रोदन करने लगीं। बाल्मीकि ने उन्हें ले जाकर अपने आश्रम में आश्रय दिया जो वहाँ से अत्यन्त समीप था। आश्रम में सीता के दो पुत्र पैदा हुए, जिनका पालन, पोषण और शिक्षण महर्षि बाल्मीकि ने पूर्ण सतर्कता के साथ किया। राम अयोध्या में अत्यन्त अशान्ति का जीवन व्यतीत कर रहे थे। केवल कर्तव्य पालन के लिए शासन करते थे। उन्हें अपनी निर्दोष पत्नी की याद बराबर सताती रहती थी। वर्ष बीतते गये। उन्होंने अश्वमेध करने के लिए अश्व छोड़ा। यज्ञ समाप्ति के उत्सव को पूर्णता देने के लिए महर्षि बाल्मीकि भी इन दोनों राजकुमारों के साथ आये जो आदि कवि रचित रामायण का गान कर रहे थे। राम ने सभा के समक्ष ही बालकों से प्रभावित होकर उनके विषय में महर्षि से पूछा। बाल्मीकि जी ने बतलाया कि यह आपके ही पुत्र हैं राम को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और जब उन्हें यह भी पता चला कि सीता अभी जीवित है तो उन्हें लेने के लिए आदमी भेजा सीता आईं तथा रामने सभा के सामने उनसे पुनः अपनी पवित्रता का प्रमाण देने को कहा। सीता इस अपमान से भरकर जैसे ही बोलीं कि यदि मैंने अपने जीवन में राम को छोड़कर अन्य से कोई लगाव न रक्खा हो तो पृथ्वी माता मुझे शरण दें। तत्क्षण ही पृथ्वी फट गई और उसके बीच से एक सिंहासन निकला और पृथ्वी माता अपनी निर्दोष पुत्री को लेकर अन्तर्धान हो गईं। वहाँ पूर्ण शान्ति छा गई। इसके बाद अपना अस्तकाल समीप समझ राज्य को चारो भाइयों के पुत्रों में समान रूप से विभक्त कर राम स्वतन्त्र हुए। चारों माताएँ स्वर्गारोहण कर गईं। राम ने लक्ष्मण का परित्याग कर दिया और स्वयं सरयू नदी में समाधि ले ली। उनका अनुमरण शेष भाइयों और नगर वासियों ने किया। उत्तरकाण्ड समाप्त।

प्रो० जैकोबी ने[1] दासरामायण म माषा, भूगोल, ज्योतिष तथा अन्य आधारों पर आश्रित होकर रामायण का समय ८००–५०० बी०सी० निर्धारित किया है। रामायण म समय समय पर प्रक्षिप्त अ श जुड़े हैं। यह कार्य ईसा की प्रथम शताब्दी तक होता रहा है। बालकाण्ड कुछ ही सर्ग प्राचीन हैं, शेष सारा बालकाण्ड बाद को सम्मिलित किया गया है। उत्तरकाण्ड तो पूरा बाद का है। इन काण्डों म हम राम को सर्व प्रथम स्वर्गीय अवतार के रूप म वर्णित पाते हैं। उत्तररामचरित राम के जीवन के उत्तरकाल से सम्बन्धित है। भवभूति का उत्तररामचरित रामायण की कथा स बहुत अन्तर रखता है। प्रश्न यह उठता है कि भवभूति के उत्तररामचरित क कथानक का स्रोत कहाँ है ? यद्यपि भवभूति ने स्पष्ट शब्दों मे वाल्मीकीय कथा के प्रति आभार वीरचरित मे और उत्तररामचरित मे प्रदर्शित किया है, फिर भी उनके कथानक में अन्य ग्रन्थों का भी बहुत बड़ा प्रभाव है। महाभारत मे रामकथा सम्बन्धी रामोपाख्यान है।[2] किन्तु इसमे राम राज्याभिषेक के बाद की कथा का कोई भी उल्लेख नही है। इसलिए कुछ विद्वान रामायण के वर्तमान रूप को महाभारत से बाद का स्वीकार करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि मार्कण्डेय पुराण उत्तरकाण्ड की कथा का उल्लेख इस प्रकार करता है कि किस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष और स्त्री भी दुर्भाग्य के फेर मे पड़कर कष्ट उठाते हैं किन्तु अन्त म आनन्द प्राप्त करते हैं। महाभारत ७।५९ में राम की मृत्यु का संक्षिप्त विवरण देता है। किन्तु महाभारत का भवभूति के नाटकों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। राम कथा कम या अधिक विस्तृत रूप से विभिन्न पुराणों में प्राप्त होती है, जैसे ब्रह्मपुराण (जिसका एक भाग अध्यात्म रामायण है), भागवत पुराण, गरुड़

[1]—दास रामायण पृ० १११ जर्मन संस्करण
[2]—महाभारत ३/२७३

पुराण, स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, कूर्म पुराण और पद्म पुराण आदि।

पद्मपुराण और राम कथानक:—पौराणिक साहित्य में पद्मपुराण राम कथानक की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें राम कथा तीन विभिन्न स्थानों में विभिन्नता और अपनी अपनी विशिष्टता के साथ प्राप्त होती है। यह तीनों विभिन्न रूप अपनी-अपनी सामयिक भिन्नता और अन्तर सिद्ध करते हैं।

प्रथम रूप—पद्मपुराण के सृष्टि खंड के तीन अध्यायों में (२६९—२७१) भगवान् राम की कथा है। यह संक्षिप्त रूप में है और यह अंश बाद का भी माना जाता है। यह कथा उपर्युक्त राम कथा से मिलती जुलती है। केवल ५ स्थानों पर मतभेद है—

१—राम विवाह के बाद पूरे १२ वर्ष अयोध्या में रहे।

२—काक का कथानक रामायण में इस प्रश में है जो प्रक्षिप्त माना जाता है। यहाँ पर यह प्रमुख स्थान में है और मौलिक अंश है।

३—पुराण के अनुसार राम १३ वर्ष तक पंचवटी में रहे और १४वें वर्ष शूर्पणखा की नाक और कान स्वयं काटे।

४—पुराण के अनुसार राम राज्याभिषेक के बाद सहस्र वर्ष पर्यन्त राज्य करते रहे और बाद में सीता का त्याग अपवाद फैलने पर करते हैं।

५—पुराण में राम का चरित्र पूर्णरूप से देव रूप में चित्रित है।

द्वितीय रूप—पद्मपुराण के पाताल खंड का ११२वाँ अध्याय राम कथा का वह रूप देता है, जिसे विद्वान् प्राचीनतम रूप मानते हैं। किन्तु कथा कोई सुन्दर व्यवस्थित रूप न होने से हम इसे कल्पित कह सकते हैं, क्योंकि इस कथा के तथ्यों के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। कथा भी मनगढ़ है।

तृतीय रूप—पद्मपुराण के पातालखड का एक छोटा अंश[1] रामकथा का प्रत्यक्ष तो नही, किन्तु वाल्मीकीय रामायण के बारे में मौलिक विवरण प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार रामायण मे ६ काण्ड है। १—बाल काण्ड—जो आज के बाल काण्ड और अयोध्या काण्ड का योग है। २—अरण्य काण्ड। ३—किष्किन्धा काण्ड ४—सुन्दर काण्ड। ५-युद्ध काण्ड और ६—उत्तर काण्ड। उत्तर काण्ड को छोड़कर शेष काण्डों का कथानक रामायण के अनुसार ही है, किन्तु उत्तर काण्ड मे अगस्त्यादि ऋषियो से राम के वार्तालाप का, अश्वमेध का और सीता परित्याग का वर्णन है। पदमपुराण का यह अ श मौलिक रामायण में—सीता का भूमि प्रवेश, लक्ष्मण की मृत्यु, राम व दूसरे भाइयों की जल समाधि, वाल्मीकि और राम पुत्रो का सभा मे आना और रामायण गाना—इन सभी घटनाओं को नहीं स्वीकार करता है। हमारे पास रामायण के २४००० पद्य होने के प्रमाण भी हैं जो वाल्मीकि जी क कथन १/४ बाल काण्ड से बिलकुल मिलता जुलता है। पद्मपुराण सर्गों आदि के बारे मे कुछ नही कहता है। वाल्मीकि रामायण के विषय मे लेखक ने विश्वास के साथ सभी बातें लिखी हैं।

पद्मपुराण का उत्तर काण्ड सम्बन्धी कथानक—वाल्मीकि रामायण का वाह्य रूप स्पष्टत उसे दु खान्त सिद्ध कर देता है। भवभूति के अनुसार[2] वाल्मीकि रामायण अपने प्रथम रूप में राज्याभिषेक के पश्चात् सीता परित्याग के साथ साथ समाप्त हो जाती है। उत्तरचरित के बारे मे वे सकेत करते हैं कि इसे वाल्मीकि ने अभिनय के लिए निर्मित किया और बाद मे जोडा जो सीतापुर्नमिलन के साथ समाप्त होना है। भवभूति का उल्लेख सोद्देश्य है। उत्तर के ७वें अङ्क मे[3] वे अनुभव करते है कि वाल्मीकि द्वारा बाद मे जोड़ा गया अ श 'दुःखान्त' है जो हिन्दू नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकों के

[1]—६६ अ० १६४-१८४ [2]—उत्तर० ४/२२ [3]—उत्तर० ७।१५

लिए उचित नहीं है। भारतीय सुखान्त नाटक (कामेडी) पसन्द करते हैं। दुखान्त (ट्रेजडी) दृश्य वर्जित हैं। फलतः भवभूति ने उत्तररामचरित को सुखान्त कर दिया है। यद्यपि भरत मुनि ने स्पष्ट कहा है कि नाटक मे सुख और दुख दोनों का प्रदर्शन होता है[1] फिर भी जनरुचि ही नियम होती है। भारतीय संस्कृति आनन्दवादी है दुखवादी नहीं।

भवभूति ने रामके उत्तरचरित के लिए कथानक का वस्तु सविधान पद्मपुराण के पातालखड के आधार पर किया है। पातालखड मे राम के राज्याभिषेक कालोत्तर जीवन का विवेचन इस प्रकार है—अश्वमेध यज्ञ की योजना होती है—अश्व छोड़ा जाता है और कई स्थानों पर पकडा जाता है पर सर्वत्र राम पक्ष की विजय होती है। अन्त मे अश्व वाल्मीकि आश्रम मे आता है और लव द्वारा पकडा जाता है। युद्ध होता है। कुश आकर सभी रामपक्षी सेनापतियों को जिनमें हनुमान, सुग्रीव आदि हैं, बन्दी बनाते हैं। किन्तु बाद में सीता जी बंदियों को पहिचान कर अश्व के साथ उन्हें छुडा देती हैं। अश्वमेध यज्ञ पूरा होता है। जब राम उन दोनों बालकों के शौर्यपूर्ण कार्यों को सुनते हैं तो यज्ञ मे आये महर्षि वाल्मीकि से उनके विषय मे पूछते हैं।' वस्तुतत्व का यथार्थ परिचय पाकर वे सीता को बुलवाते हैं। दोनों बालक भी रामायण गाते हुए, जो उन्होने वाल्मीकि से सीखी थी, आते हैं। वाल्मीकि से शत्रुघ्न और अन्य लोगों की साक्षियों के साथ राम सीता को पुनः अंगीकार करते हैं। इसके बाद बहुत काल तक सुख और समृद्धि के साथ शान्तिपूर्वक सीताराम राज्य करते हैं।

पद्मपुराण मे रामाश्वमेध प्रकरण का यह कथानक भवभूति से बाद का है, इसके लिए कोई तर्क और प्रमाण नहीं। हो सकता है

---

[1]—ना० शा० १/७३

भवभूति के समय राम के उत्तरचरित विषयक सुखान्त और दुखान्त दो प्रकार के कथानक प्रचलित रहे हों।

पद्मपुराण और भवभूति के कथानक में अन्तर—

१–पद्मपुराण के अनुसार अश्वमेधीय अश्व की रक्षा भरत पुत्र सेनापति पुष्कल कर रहे हैं। जबकि भवभूति के अनुसार लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु सेनापति हैं।

२–पद्मपुराण के अनुसार बालकों (लव आदि) की अवस्था १६ वर्ष है, जबकि भवभूति के अनुसार १२ वर्ष की हैं।

३–पद्मपुराण के अनुसार युद्ध में हनुमान, सुग्रीवादि सभी अनुचरों को भी पराभूत दिखाया गया है। जबकि भवभूति इसका पूर्णतः बहिष्कार किए हुए हैं।

४—पुराणानुसार शस्त्र विद्या और युद्ध विद्या स्वयं सिखाते हैं, जबकि भवभूति उन्हें पितृ परंपरा से स्वयं प्राप्त कह देते हैं।

५—पद्म पुराण में युद्ध क्षेत्र में राम का गमन नहीं दिखाया गया है। वहाँ सीता वन्दियों और अश्वों को, राम के जानकर छुड़ा देती है और बाद में यज्ञस्थल में राम का बालकों से परिचय होता है। भवभूति राम, कौशल्या आदि परिवार के लोगों को युद्ध में पहुँचाकर सभी की भेंट और पहिचान आपस में करा देते हैं।

६—सीता अपनी शुद्धता का दुबारा प्रमाण नहीं देती हैं।

रामकथा समीक्षा—भवभूति के दो नाटकों के कथानक की आश्रयभूत रामकथा में कितने रूप सम्बन्धी परिवर्तन-मौलिक उद्भावन, सम्प्रदाय और धर्मानुकूल परिष्करण हुए और उसका ऐतिहासिक क्या स्वरूप है एवं भवभूति के कथानकों का उससे कहाँ सम्बन्ध है। इस पर विचार किया जावेगा।

ऐतिहासिक तत्व—रामायण की कथा वास्तविक घटनाओं पर आधारित है–इसमें संदेह नहीं है। वाल्मीकि ने केवल दो या एक स्थानों

पर ही अपने नायक का पक्षपात किया है जैसे वालि वध की घटना यह कल्पना निरर्थक होगी कि रामकथानक बिना किसी मूल के वाल्मीकि के मस्तिष्क की उपज है। डा० वेलवलकर संभावना करते हैं कि हो सकता है वाल्मीकि ने दो घटनाओं—

१—राज्य परिवार के झगड़े और वनवास,

२—दक्षिण भारत का आर्यीकरण। यह कोई आख्यान रहा होगा जिसमें किसी वीर क—जिसने दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता फैलाई होगी वर्णन रहा होगा,

की कहानियों को एक ही नेता से सम्बन्धित कर एक महाकाव्य का कथावस्तु तैयार कर लिया। वाल्मीकि उत्तरी भारत के हैं अतः उनके ग्रन्थ में दक्षिणी भारत सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य सही होंगे ऐसी आशा व्यर्थ है। कुछ लोग इसी बात को लेकर रामायण को कोरी कल्पना की उपज कह देते हैं। वे राम की सीधी राह की खोज में हैं। पंचवटी, पंपा और ऋष्यमूक की स्थिति आज भी विचारणीय है। वाल्मीकि का भूगोल उलझा हुआ है। किन्तु इन्हीं कारणों को लेकर रामायण के मौलिक तत्वों और कथानक के ऐतिहासिक सत्यों को कल्पना कह देना कोरी देना विचारशून्यता ही होगी।

रामायण में इतिहास और कल्पना का योग—रामायण इतिहास और प्राचीन प्रारंभिक प्राकृतिक मूर्त कथाओं (एलेगरी) का सम्मिश्रण है जैसे ऋग्वेद में सीता शब्द का अर्थ है -[1] कुंड (फरो) जो एक व्यक्ति वाचक संज्ञा नहीं है। सीता का जन्म पृथ्वी से कहा गया है और उनके पुत्रों के नाम कुश=एक घास और लव=काटना है। सीता का पुनः पृथ्वी में अन्तर्धान होना, यह सब उपर्युक्त वर्णन किसी कृषि देवता सम्बन्धी आख्यान (एलेगरी) ज्ञात होता है। यदि राम को वैदिक इन्द्र मान लें जो कि वर्षा का देव है, तो यह बातें बहुत सुन्दर ढंग से मेल खा जाती हैं। जैसे रावण का पुत्र इन्द्रजीत है और सीता

---

[1]—इन्ट्रोडक्शन उत्तर रामचरित (हार्वर्ड सीरीज)

का शत्रु है और अवरोध का कारण भी है, मारुति जो मानसून वर्षा के बादलों की भांति है समुद्र के ऊपर उड़ता है और राम को सीता का समाचार—आनन्द—पहुंचाने वाला है। मारुति का अर्थ है, वायु-देव का पुत्र। य तथ्य इतिहास और कृषि आख्यान दानो के प्रतीक रखते हैं। आख्यान की ऐसी परपरायें वैदिक युग मे बहुत सी प्रचलित थी, किन्तु वाल्मीकि युग के प्रवेश काल म ऐसी परपराए अन्त समय को प्राप्त हो चुकी थी। उपर्युक्त विवेचन से निष्कष निकलता है कि रामायण की कथा के तीन स्रोत है—

१—ऐतिहासिक सत्य—जो राज्य परिवार के झगडे और वनवास तक सीमित है।

२—इस कथा मे वे ऐतिहासिक तथ्य हैं, जो अत्यन्त उलझे हैं और किसी ऐसे वीर से सम्बन्धित है जिसने दक्षिण का आर्यीकरण किया है।

३—आख्यान (एलेगरी) सबन्धी सकेत जो इन्द्र और उसके शत्रु-ओ कृषि के शत्रु हैं—(वृत्र आदि) इनसे सबन्धित है। यद्यपि इन तत्वों ने अब अपनी विशिष्टता खो दी है और ऐतिहासिक रूप मे-ऐतिहासिक नेता के वर्णन के रूप मे स्वीकृत हो चुके हैं।

क्या होमर क इलियड और ओडेसी आदि का वाल्मीकि के कथा-नक के ऊपर ऋण है[1] इसका विवेचन और आलोचन यहाँ हम नही करेंगे क्योंकि डा० वेबर के तर्कों का खण्डन के०टी० तैलंग[2] और प्रो० जैकोबी[3] ने पूर्णत. कर दिया है।

महाकाव्यों के उपरान्त रामकथा के विविध रूप—

बौद्ध रूप—रामकथानक का एक रूप 'दशरथ जातक' मे प्राप्त होता है, जिसे आधुनिक विद्वान बौद्ध रूप से अभिहित करते है।

---

[1]-ऋग्वेद ४/५ १/४०   [2]-इण्डियन एण्टेक्वेरी १८७५, पृ०१४३

[3]-दास रामायण पृ०९४

कथानक इस प्रकार है—काशी का राजा दशरथ था जिसके तीन सन्तानें थी, राम, लक्ष्मण और सीता। ये सभी उसकी प्रथम रानी से उत्पन्न हुए थे जिसकी मृत्यु के पश्चात् उसने दूसरा विवाह कर लिया। इस नई रानी से उसके एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम भरत था। इस एक नये पुत्र की वृद्धावस्था में प्राप्ति से राजा अत्यधिक प्रसन्न हुए और अपनी इच्छा से नई रानी को एक मुंह मागा वर देने को कहा। रानी ने इस पारितोषिक को समय आने पर लेने के लिए छोड़ रक्खा। सात या आठ वर्ष बाद रानी ने अपने वरदान का स्मरण कर राजा से अपने पुत्र भरत के लिए वर रूप में राजगद्दी मागी। राजा ने इस प्रकार का वर देना अस्वीकार कर दिया। किन्तु नारी जाति की द्वेष-वुद्धि से भयभीत होकर राजा ने अपनी प्रथम रानी की तीनों सन्तानो को १२ वर्ष बाहर रहने के लिए घर से हटा दिया। उसने १२ वर्ष के लिए ही इसलिए उन्हें बाहर कर दिया कि ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार उसे केवल १२ वर्ष और जीवित रहना है। राम भाई लक्ष्मण और बहिन सीता के साथ हिमालय की ओर चले जाते हैं। जोतिषियो के कथन के विपरीत राजा दशरथ नवें वर्ष ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। विधवा रानी भरत के लिए राज्य प्राप्ति के प्रयत्न करती है किन्तु भरत पूर्णतः अस्वीकार कर देते हैं और अपने बड़े भाई की खोज में चल देते हैं। राम से मिलने पर भरत उन्हें लौट चलने के लिए कहते हैं किन्तु राम उस समय लौटने से अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि राजा की आज्ञानुसार अभी १२ वर्ष पूरे नहीं हुए थे। तीन वर्ष बाद वे काशी आते हैं और सीता के साथ विवाह करके शान्ति से शासन करते हैं।

बौद्ध लेखक ने राम कथा का विकृत रूप दिया है। क्योंकि भारत में किसी भी युग में सगे भाई बहिन का विवाह प्रचलित न था। कुछ दिनों तक बाल्मीकि रामायण का आधार दशरथ

नाटक को कुछ लोग मानते रहे थे। किन्तु प्रो० जैकोबी ने इस विचार को अनर्गल प्रलाप सिद्ध कर दिया है[1] आज विश्व के सामने ३०० बी० सी० से बहुत पहिले राम कथा की प्राचीनता प्रकट है।[2]

जैन रूप—रामकथा का जैन रूप रविषेण के पद्मपुराण, अमितगति की धर्मपरीक्षा और हेमचन्द्र के त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित में प्राप्त होता है। इन जैन ग्रंथों की रामकथा प्रधानतया बाल्मीकि रामायण का ही अनुसरण करती है। रामकथा का प्रयोग जैनियों ने अपने धर्म की शिक्षाओं के प्रचार के लिए किया है। राम एक जैन साधु हैं, जो मांसादि का सेवन नहीं करते हैं। फलत: जैनियों ने कंचनमृग और मारीचि वाला कथानक हटा दिया है। रावण सीता को उस समय हर ले जाता है जब राम और लक्ष्मण जनस्थान के १४ सहस्र राक्षसों के साथ युद्ध में संलग्न हैं। राम बाली का वध प्रत्यक्ष युद्ध में करते हैं। सीता परित्याग के वर्षों पश्चात् जब राम पुन: सीता से मिलते हैं तो अश्वमेध यज्ञ के कारण नहीं, (जैनी पशुहिंसा करते नहीं अत: यज्ञ का उल्लेख नहीं है) महर्षि बाल्मीकि के कारण नहीं, प्रत्युत जनता के कहने से क्योंकि जनता वास्तविक तथ्य जानती है और किन्हीं व्यक्ति विशेषों के कहने से यह त्याग अनुचित समझती है। राम सीता को पुन: खो देते हैं। इसलिए नहीं कि सीता पृथ्वी में समा जाती हैं, किन्तु जब सीता पवित्रता की पुन: परीक्षा ली जाती है तो वे संसार की कटुता को समझ और देखकर विरक्त हो जाती हैं और जैनभिक्षुणी बन जाती हैं। वे अपने सुन्दर और लंबे केशों को अपने हाथों से काट डालती हैं। यह घटना देखकर राम स्वयं जैन भिक्षुव्रत ले लेते हैं। जैन ग्रन्थों के अनुसार रामायण के बन्दर, रीछ और राक्षस

[1]–दास रामायण पृ० ८४-९३

[2]–भास के दो नाटक रामकथा से सबंधित हैं।

वस्तुतः बन्दर-रीछ और राक्षस नहीं हैं। किन्तु वे मानव नहीं है। वे लोग अपनी पताकाओं में बन्दर, रीछ और राक्षसों की आकृतियां रखते थे जिसके कारण उन्हें इन नामों से पुकारा जाता था।

रामकथा का सुधरा हिन्दू रूप—रामकथा के प्राप्त विविध हिन्दू रूपों के विषय में तो एक विस्तृत ग्रंथ लिखा जा सकता है। संस्कृत और विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में इस विषय का साहित्य पूर्ण समृद्ध है। इस साहित्य के अध्ययन से, विभिन्न विचारों, विश्वासों और निर्णयों के कारण समय २ पर रामकथा को कैसे २ रूप मिले इसका ज्ञान हो सकता है और आज उसे क्या रूप प्राप्त है इसका ऐतिहासिक विवेचन किया जा सकता है। कुछ तत्वों के विषय में हम यहां विवेचन करेंगे जो हमारे विषय से आगे संबन्ध रखेंगे।

१—अतिशयोक्तियाँ—बाद की रामकथाओं में अति प्रशंसाएं हैं। जिन्हें हम स्वभावत. संस्कारों के कारण स्वीकार कर लेते हैं। जैसे लंका युद्ध दिनों से बढ़कर महीनों का वर्णित किया गया। रामायण में (विविध संस्करणों में दिन संख्या विभिन्न है) यह युद्ध दिनों में ही वर्णित है।

समय की दीर्घता या अन्तर अलौकिक क्रियाकलापों से जो दोनों पक्ष दिखाते हैं भर गया। घटनाओं और वर्णनों की पुनरावृत्तियां की गईं। पात्रों के चरित्रों में उनके अतिकार्यों से अलौकिकता भर गई।

राम का अवतारी रूप—राम को विष्णु के अवतार के रूप में पूर्णतः चित्रित करना यह एक महान् बात थी। यद्यपि रामायण के बाल और उत्तर काण्ड से ही इस प्रथा का श्रीगणेश हो चुका था किन्तु आगे चल कर यह सीमा पार कर गई। रावण भी राम का महान् भक्त बतलाया जाने लगा। उसकी शत्रुता भक्ति के रूप में

चित्रित की जाने लगी। रावण मुक्ति के लिए भगवान् राम से शत्रुता करता था जिससे उनका सतत ध्यान रहे। सीताहरण उसको पापेच्छा से नहीं प्रत्युत उपर्युक्त ध्येय से हुआ था। रावण सीता को मातृबुद्धि से देखता था, उन्हें जगज्जननी मानता था। ऐसी भावनाएँ प्रदर्शित की गईं।

आ॰ शृंरूपता—कैकेयी के चरित को उज्ज्वल करने के लिए बहुत दिनों से प्रयत्न हो रहे थे। इसके लिए मन्थरा को चुना गया जो राम को बनवास दिलाने के लिए देवों की ओर से नियुक्त चित्रित की गई, क्योंकि रावण बध देवों को अत्यन्त आपेक्षित था। मन्थरा को कलि की आत्मा चित्रित किया गया जिसने कैकेयी की आत्मा पर अधिकार कर लिया था। वह अपनी इच्छानुकूल कैकेयी से कहलाती और कराती है। इस प्रकार से कैकेयी कृपा का पात्र बनाई गई। सीता के लकावास की पवित्रता का प्रमाण स्पष्ट करने के लिए ही उत्तरकाण्ड का कथानक रचा गया और सीता भूमि प्रवेश का करुणात्मक प्रसग सामने आया। अध्यात्म रामायण के अनुसार तो रावण ने वास्तविक सीता का हरण न कर छाया की सीता का हरण किया था। राम ने सर्वज्ञाता होने के कारण कांचन मृग के आगमन के समय ही सीता जी से अदृश्य रूप मे स्थित होने के लिए कहा और माया की सीता वहाँ उपस्थित हुई जिसे रावण हर ले गया और अग्नि परीक्षा के समय माया नष्ट हो गई और वास्तविक सीता उपस्थित हो गई, जो रावण के स्पर्शादि से रहित थी। राम ने माया की सीता का हरण राक्षसों के बध का अवसर प्राप्त करने के लिए करवा दिया था। इस प्रकार पूर्ण रूप से राम और सीता के आदर्श चरित्र की रक्षा की गई।

पूर्व कारणता—सभी कार्यों, चरित्रों और घटनाओं के कार्य रूप मे चित्रित किया गया। राम और रावण आदि के जन्म भी पूर्व कारण जन्य हैं। दशरथ का पुत्र वियोग मे मरना, श्रवण कुमार के वियोग मे मृत उसके पिता की मृत्यु के कारण होने के कारण चित्रित किया गया।

प्रत्येक राक्षस राम द्वारा मारे जाने पर देवता हो जाता है क्योंकि किसी कारणवश वह देव से राक्षस हुआ था। राम कथा के पात्र पूर्व जन्म के कारणों से सम्बन्धित हैं।

दार्शनिकता—लेखकों का ध्यान कथानक को दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ उपस्थित करने की ओर गया। योगवाशिष्ठ और अध्यात्म रामायण (रामगीता) इसके निदर्शन हैं। वेदान्त दर्शन की महत्ता राम कथा में भी प्रविष्ट हुई।

नूतन उद्भावनाएं और कवित्वमयता—इस युग में सीता स्वयंवर और अंगद का दौत्यकर्म बहुत ही विस्तार के साथ साहित्यिक वर्णनों के रूप में आने लगे। यद्यपि शेष घटनायें जैसी की तैसी ही रहीं। सहस्त्रों लेखकों ने रामकथा पर लेखनी चलाई हैं। जिनकी कृतियां सारेभारत में पढ़ी जाती है। रामकथा का पठन और श्रवण सभी व्यक्ति यथायोग्य करते हैं। रामकथा भारत की संस्कृति और हिन्दूसभ्यता का प्राण बन गई है। यह समाज की मर्यादाओं को दृढ करती है और भारतीय जनता में अपने आदर्श पात्रों के माध्यम से त्याग, प्रेम और सौजन्य के भाव भरती है। सत्य की विजय और अन्याय के विनाश का मौलिक सत्य प्रस्फुटित करती है।

भवभूति के नाटकों मे रामकथा का कितना और किस रूप में ऋण है—बाल्मीकि रामायण, पद्मपुराण आदि के राम कथानक का कहाँ तक उपयोग हुआ है—यह हम पृथक २ नाटकों क वस्तु विवेचन क समय मे विवेचित करेंगे।

भास, कालिदास और बृहत्कथा भवभूति की वस्तु के स्रोत—

भवभूति ने उत्तर के प्रथम अंक की कल्पना भास के स्वप्नवासवदत्तम् के ५ अंक के स्वप्न में चित्र दर्शन दृश्य से, अथवा रघुवंश के १४/२५ के इस श्लोक से "तयोर्यथा प्रार्थितमिन्द्रियार्थान्" से लिया है ऐसा अनुमान होता हैं। उत्तर के ६ अंक मे राम, कुश आदि का मिलन शाकुन्तल के ७ अंक के दुष्यन्त, भरत आदि के मिलन के समान

है। सीता का छायारूप शाकुन्तल के सानुमती के छायारूप की भाँति है। मालतीमाधव के ९ अंक और विक्रमोर्वशीय के ४ अंक मे पर्याप्त साम्य है। विरहीमाधव का मेघदूत कालिदास के मेघदूत से पूर्ण अनुकृत है। मालतीमाधव की केन्द्रकथा गुणाढ्य की बृहत्कथा की ऋणी है, जिसका प्रमाण क्षेमेन्द्र की मंजरी है। सोमदेव के कथासरित्सागर से भी इस बात की पुष्टि होती है। यथास्थान हम इसका विस्तार के साथ विवेचन करेंगे। महावीर चरित तो रामायण की कथा का कुछ अन्तर के साथ ऋणी है।

पञ्चम अध्याय

भवभूति के नाटकों का शास्त्रीय विवेचन–

महावीर चरित-कथासार–

प्रथम अङ्क

महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ होने वाला है। उन्होंने यज्ञ की रक्षा हेतु राम लक्ष्मण को लाकर रख लिया है। कुशध्वज भी निमन्त्रण में सीता तथा उर्मिला के साथ वहाँ पधारते हैं। कुशल प्रश्न के उपरांत कुशध्वज राम लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करके हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हैं। इसी बीच राम अहिल्योद्धार करते हैं। कुशध्वज को राम की महिमा देख कर पछतावा होता है कि यदि धनुभङ्ग की प्रतिज्ञा न लगाई गई होती तो सीता का विवाह राम के साथ होकर ही रहता। इसी समय रावण ने सीता को मगनी के लिए दूत भेजा। उसके प्रस्ताव पर टालमटोल होने लगा। इधर राम ने ताड़का को तलवार से समाप्त किया। राक्षस को इससे बड़ा खेद हुआ। उसने पुनः प्रस्ताव किया। राजा तथा विश्वामित्र ने फिर टाल दिया। विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को दिव्यास्त्र दिए। राजा की उत्कण्ठा बढ़ी देख कर विश्वामित्र ने हर चाप मंगवाया और राम से उसको भंग करवाया। इस प्रकार चारों भाइयों के विवाह जनक तथा कुशध्वज की पुत्रियों से स्थिर हुए। राम ने सुबाहु तथा मारीच का भी बध किया।।

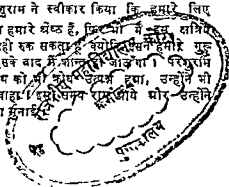
द्वितीय अंक

मिथिला से लौटकर राक्षस ने सारा वृत्तान्त लंकाधिप के मन्त्री से कहा, उसकी चिन्ता बढ़ गई। उसने शूर्पणखा से राय ली, इसी समय परशुराम का पत्र मिला कि दण्डकवासी निशाचर वहाँ के ऋषियों को सताते हैं उन्हें रोकिये। इसी प्रसंग में निश्चय हुआ कि परशुराम को उकसाया जाय कि वह हरचाप भंजक राम का दमन करें। इधर राम कन्यान्तःपुर में थे, दशरथ आदि उनके अभिभावक मिथिलाधीश के यहाँ आतिथ्य सत्कार प्राप्त कर रहे थे। इसी समय परशुराम आए, और अपने गुरु के चाप के भंजन करने वाले राम को देखने की इच्छा प्रकट की।

राम आए, परशुराम को राम के दर्शन से बड़ी प्रीति हुई, परन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा से असमर्थ थे, क्षत्रिय कुल नाश की प्रतिज्ञा को दुहराते हुये परशुराम ने राम को भी वध्यकोटि में गिना। इस अमंगल वृत्त से जनक, शतानन्द सबको कष्ट हुआ, सबने अपने अपने ढंग से परशुराम को समझाया, फिर भी उनका क्रोध कम नहीं हुआ। जनक अस्त्र ग्रहण करने पर तथा शतानन्द शाप देने पर भी उतारू हो गये, फिर भी परशुराम दृढ़ रहे। इसी बीच राम को अन्तःपुर में बुला लिया गया और शेष जन दशरथ विश्वामित्र के पास गए।

तृतीय अंक

परशुराम के क्रोध को शान्त करने के लिए विश्वामित्र तथा वशिष्ठ ने भी बहुत समझाया। उनकी विद्या, तपस्या, कुल परम्परा की अत्यन्त प्रशंसा की। परशुराम ने स्वीकार किया कि हमारे लिए आपके उपदेश मान्य हैं, आप हमारे श्रेष्ठ हैं, फिर भी मैं इस क्षत्रिय कुमार का वध किए बिना नहीं रुक सकता हूँ क्योंकि इसने हमारे गुरु का अपमान किया है। हाँ इसके बाद मैं शान्त हो जाऊँगा। परशुराम का कोप उग्र होते देख दशरथ को भी क्रोध उत्पन्न हुआ, उन्होंने भी अस्त्र का अवलम्बन करना चाहा। इसी समय राम आये और उन्होंने परशुराम के दमन की प्रतिज्ञा सुनाई।



चतुर्थ अंक

पराजित परशुराम तप करने चले गए उन्हें ज्ञान हो गया। परशुराम की पराजय से राक्षसराज के मंत्री माल्यवान् को बड़ी चिन्ता हुई, उसने उपाय सोचना प्रारम्भ किया, जिससे राम को दबाया जा सके। राम के अभ्युदय से उसे भय होता था। परामर्शानुसार शूर्पणखा को मन्थरा का रूप धारण करके मिथिला भेजा गया, वह कैकेयी की दासी मन्थरा के रूप में मिथिला आई, और कैकेयी से राजा के द्वारा दिए गये वरदान की बात चलाने लगी। एक वर से भरत को राजा तथा दूसरे वर से राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास दिलवाया। सीता तथा लक्ष्मण के साथ राम बन गए, साथ होने वाले पुरजनों को आग्रहपूर्वक लौटा दिया। भरत को बहुत आग्रह पूर्वक लौटा दिया। भरत के बहुत आग्रह करने पर राम ने अपनी स्वर्णमय पादुका उन्हे दे दी, जिसे नन्दिग्राम में अभिषिक्त करके भरत ने राज्य कार्य का सचालन प्रारम्भ किया। राम दण्डक की ओर बढ़े।

पञ्चम अंक

रावण ने सीता का हरण किया। उसकी खोज मे राम लक्ष्मण वन-वन भटकते थे, उसी प्रसग मे जटायु से भेंट हुई, जिसे सीतापहर्त्ता रावण ने मृत्युप्रतीक्ष बनाकर छोडा था। जटायु से सारी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके राम लक्ष्मण किष्किन्धा की ओर बढ़े, मार्ग मे विराध का वध किया। सुग्रीव से मैत्री हुई। रावण प्रेरित वाली का वध करके राम ने सीता की खोज मे वानरों को भेजा। मरने के समय वाली ने भी राम और सुग्रीव की मैत्री में दृढता का बन्धन डाला।

षष्ठ अंक

वाली के मरने पर माल्यवान् को बड़ी चिन्ता हुई, उसे अपने पक्ष का दुर्बलत्व प्रकट प्रतीत होने लगा। उसने प्रयत्न किये कि रावण कुछ उपयुक्त उपाय काम में लावे किन्तु रावण ने इस पर कोई चिन्ता

नहीं की। राम ने लंका पर चढ़ाई की। राम रावण सैन्य में घोर युद्ध हुआ, एक एक कर वीरगण कटने मरने लगे। घमासान युद्धोपरान्त मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध में मेघनाद प्रयुक्त-शक्ति से आहत लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े। राम पक्ष में विषाद की घटा छा गई, सबकी सम्मति से हनुमान सञ्जीवनी लाने गये, उस विशेष जड़ी के नहीं पहचाने जान पर वे पर्वत ही उठा लाये। पर्वतवर्ती औषधों की हवा के लगने से लक्ष्मण को चैतन्य हो आया। राम पक्ष में खुशियाँ मनाई जाने लगी। तदनन्तर युद्ध में मेघनाद, रावण सभी मारे गए, सीता का उद्धार हुआ।

सप्तम अङ्क

रावण की मृत्यु के पश्चात् राम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार विभीषण को लङ्का का अधिपति बनाया। विभीषण ने राज्याधिकार के मिलते ही देव वन्दियों को मुक्त कर दिया। लङ्का काण्ड समाप्त करके अग्निशुद्ध सीता को साथ ले, राम लङ्का से अयोध्या को चले। विमान पर से सीता को राम ने मार्गवर्ती समुद्र और अन्यान्य स्थानों के परिचय दिए। मार्ग में विश्वामित्र का आश्रम मिला परन्तु उनका आदेश हुआ कि शीघ्र अयोध्या जायें, मार्ग में रुके नहीं। अयोध्या आन पर भरत आदि बन्धुओं से मिलने के बाद वसिष्ठ आदि पूज्य ऋषियों ने राम का राज्याभिषेक किया। इस प्रकार राम का वीरचरित पूर्ण हुआ।

नाम, वस्तु और पात्र समीक्षा

महावीरचरित को वीरचरित भी कहते हैं। इस नाटक के नाम के विषय में बड़ा आकर्षक विचार यह है कि सारे नाटक में राम के लिए कहीं भी महावीर नाम से अभिहित नहीं किया गया है। जब कि राम के सभी प्रमुख शत्रुगण, कवि और पात्रों

द्वारा, स्वयं राम द्वारा भी—महावीर कहे गये हैं। खरी, खर,दूषण, त्रिशिरा, रावण और परशुराम आदि सभी महावीर पदभाज हैं। राम के लिए कहीं भी महावीर शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ है। अतः नाटक का नाम चिन्त्य न होते हुए भी विचारणीय है।

राम की कथा जो प्राचीन वैभव और मनोरम विशद भविष्य की आभा लिए थी, कवि को आकृष्ट करने मे पूर्ण सफल हुई। महावीर चरित के १/७ से यह स्नेह प्रथम बार ही स्पष्ट हो उठा है। इस नाटक मे लेखक ने रामकथा के पूर्वार्ध को नाटकीयता प्रदान की है। नाटक का कथानक राम विवाह के बहुत पहिले मे लेकर वनवास, सीता हरण तथा सीता की पुनः प्राप्ति और अयोध्या आगमन एवं राज्याभिषेक के बाद जाकर समाप्त होता है। भवभूति ने बड़ी कुशलता से कई वर्षों के लंबे समय मे फैली हुई विविध घटनाओं और कार्यों को एक सूत्र में निबद्ध कर विविध और बहुसंख्यक पात्रों के साथ नाटकीय रूप में उपस्थित किया है। कवि के सामने यह एक बड़ी समस्या थी। एकता का कोई सूत्र न था। केवल वे सभी राम से सम्बन्धित थे यहीं एक एकता का मूल था। यद्यपि कवि की यह कृति कलापूर्ण और सफल नहीं कही जा सकती फिर भी कवि का यह प्रथम प्रयास स्तुत्य है। कवि ने इस नाटक मे बहुत से पात्र—परशुराम, मन्थरा, शूर्पणखा, खर 'मरीच' जटायु, सुग्रीव, हनुमान, बाली, कैकेयी, माल्यवान्, विभीषण, कुंभकर्ण, रावण, विश्वामित्र आदि न जाने कितने चरित्र उपस्थित किए है। जो आते और तुरन्त जाते है। परिणाम स्वरूप नाटक मे कथानक की एकता का सौन्दर्य नहीं है। नाटक एक भीड़ के रूप में है। किन्तु महाकाव्य की रामकथा को नाटकीय रूप मे प्रस्तुत करने की दिशा में यह प्रथम चरण अपना महत्व रखता है। जिसमें एक कथा ऐतिहासिक क्रम के साथ छोटी छोटी कई घटनाओं मे विभक्त कर दी गई है।

रामायण के साथ २ भास के बालचरित, प्रतिमा नाटक और अभिषेक नाटक का भी महावीरचरित के कथानक के ऊपर प्रभाव है।

रामायण और महावीर चरित के कथानक मे अन्तर—हम यहाँ पर यह विचार करेंगे कि भवभूति कैसे कथानक मे एकता लाने और नाटकीय आवश्यक तत्वों का संग्रह करने के लिए रामायण के कथानक म इधर उधर हुए है। नाटक म राम एक आदर्श नृपति हैं और भवभूति ने अपन नायक के आदर्श चरित्र की प्रत्येक प्रकार स रक्षा की है। उनका शत्रु रावण राक्षसा का राजा है जो दुष्ट और मायावी है। फिर उनका आचरण मानवीय और स्वाभाविक है। पौराणिक अलौकिकता से रहित है। राम के विरुद्ध कार्यों का सचालन रावण की ओर स होता है। राम का चरित्र नितान्त उदात्त है। जनक न सीता स्वयवर सयोजित करन पर रावण भी अपने को एक उम्मीदवार क रूप म अप्रत्यक्ष रीति से उपस्थित करता है। वह स्वय उपस्थित न होकर दूत के द्वारा जनक से सीता की याचना करता है। उस अपन प्रभाव का गर्व है। जिसक कारण स्वयवर के नियमों का उल्लघन करता है। उसकी माग अस्वीकार कर दी जाती है और इसके सामने ही सीता राम का वरण करती है। यह रावण की शक्ति और वीरता का अपमान था। वह अत्यन्त क्रोधित हो उठता है। उसका क्रोध म और अधिक बाढ़ आ जाती है जब वह यह भी जान पाता है कि राम ने ताडका, सुबाहु आदि राक्षसों का सहार कर डाला है[1]। माल्यवान जो रावण का विश्वासपात्र मत्री और सलाहकार था उसे सान्त्वना देन का प्रयत्न करता है तथा रावण की इच्छाओं की पूर्ति कूटनीति के माध्यम से सरलता और सहजता से कराना चाहता है। नाटककार ने माल्यवान को विशेष महत्ता प्रदान की है। वह महान सफल कूटनीतिज्ञ और प्रभावशाली व्यक्ति है जिसके

---

[1] म० च० प्रथम अक

आश्रय पर रावण को पूर्ण विश्वास है। माल्यवान परशुराम से जाकर मिलता है और राम के विरुद्ध उत्तेजित करता है।[2] वह सफल होता है और परशुराम राम के विरुद्ध जनकपुर जा पहुंचते हैं किन्तु आशा के विपरीत वही पराजित होते हैं। माल्यवान की योजना को एक धक्का लगता है। फिर भी प्रौढ़ और सयाना सचिव हताश नहीं होता है रावण की बहिन शूर्पणखा को अयोध्या भेजता है कि वह जाकर मन्थरा के रूप में कैकेयी की दासी बनकर रहे और राम के जनकपुर से लौटने के पूर्व ही जाकर उनसे कहे कि उनकी सौतली मां ने उन्हें १४ वर्ष के लिए वनवास दे दिया है। इस प्रकार माल्यवान राम और सीता को वन में असहाय भटकने के लिए छोड़ना चाहता है जिससे खर, दूषण के द्वारा सेना के बल से राम को पराजित कर सीता छीन लेना कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता। यह योजना कुछ दूर तक सफल हुई। राम ने कर्तव्य के दृष्टिकोण से वन जाना स्वीकार कर लिया। सीता तथा लक्ष्मण ने उनका अनुगमन किया।[3]

भवभूति ने रामकथा में यह नई उद्‌भावनाएं करके तीन कार्यों का संपादन कर लिया है।

१–कैकेयी चरित्र को कलुषित होने से बचा लिया।

२–शूर्पणखा को पहिले से ही राम विरोध में संलग्न रखकर कवि ने पंचवटी के कथानक के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर ली जिससे राम को धोखा और संकोच न्याय की दृष्टि से न हो सके।

३–राम के चरित्र को ऊँचा उठाने के कई सुअवसर हाथ आगए। लेखक ने सीता हरण प्रवेशक में करा दिया है[4] जबकि राम १४००० राक्षसों के साथ युद्ध में व्यस्त थे। माल्यवान अपनी जनस्थानीय सेना के द्वारा राम को पराजित करने में असफल होता है तो वानरराज बाली को अपनी ओर मिलाता है और उसके द्वारा राम

1—म० च० अक द्वितीय प्रवेशक   2—अंक ४

3—म० च० ५ अंक

का वध करना चाहता है। राम और बालि का खुले स्थान में युद्ध होता है जिसमें बाली मारा जाता है। बाली ने मरते समय सुग्रीव और अंगद को राम के संरक्षण में दे दिया[1]। इससे कवि ने दो बातों का सुधार कर लिया है—

१—राम का सुग्रीव के साथ समझौता कर बालि का अन्याय से वध

२—बालि और सुग्रीव का अनुपयुक्त युद्ध का दृश्य।

यहाँ नाटक के कथानक की चरम सीमा (क्लाइमैक्स) दिखाई देती है। माल्यवान एक के बाद दूसरा इस तरह से कई उपाय प्रयोग में लाता है किन्तु उसका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि अप्रत्याशित परिणाम निकल आते हैं। कूटनीतिक प्रयत्न असफल होने पर सीधे शक्ति से राम को विनष्ट के लिए उपारम्भ किये जाते हैं किन्तु माल्यवान असफल होता है और रावण मारा जाता है।[2] विभीषण लंका के राजा होते हैं और राम पुनः सीता को प्राप्त कर अयोध्या को लौटते हैं, जहाँ उनका राज्याभिषेक होता है।[2]

संविधान की दृष्टि से वस्तु समीक्षा— भवभूति द्वारा कृत कथा वस्तु सम्बन्धी परिवर्तनों पर जब हम विचार करते हैं तो यह बात पूर्णतः हमारे सामने उपस्थित रहती है, कि भवभूति ने अपने कथास्रोतों के साथ सर्वत्र स्वतन्त्रतापूर्ण व्यवहार किया है। उन्होंने परिवर्तन को अधिकता रखकर कथा को मौलिकता और नाटकीयता प्रदान की है जिससे सुन्दरता और उपयुक्तता में वृद्धि हुई है। जैसे बालि के कथानक को,एक नया रूप देकर उन्होंने अपने नायक की धीरोदात्तता की रक्षा की है। बालि का छिपा वध धीरोदात्तनायक के प्रतिकूल कार्य होता। वह जो कुछ कहना चाहते थे, उसके विषय में उनके मस्तिष्क में स्पष्ट धारणा थी यही बात उनके परिवर्तन और परित्याग के बारे में भी कही जा सकती है। महाकाव्य की वर्णनात्मक कथा को ज्यों का त्यों

---

[1]—म० च० ५ अंक [2]—म० च० ६ अंक

[3]—म० च० ७ अंक

यह नाटक मे नही रखना चाहते थे। उन्होने अपने नायक के विभिन्न कार्यों, आपत्तियो और सफलताओ मे एक क्रम देकर एक पुष्ट चरित्र का चित्रण किया है। वे ऐसी घटनायें चुनते हैं जहाँ स्वतन्त्रता के साथ उन्हें अवसर प्राप्त था। राम का चरित्र, कर्तव्य के साक्षात मूर्तरूप, सहिष्णुता, सत्यता, शौर्य और चतुरता के आगार के रूप मे चित्रित किया गया है। उधर परशुराम जिनमेशौर्य भयानक क्रोध के साथ था। बालि जिसमे युद्ध वीरता के साथ २ दूरदर्शिता विवेक और आत्म-विश्वास की कमी थी जिसके कारण ये दोनों विनष्ट हुए। रावण शारीरिक और मस्तिष्क की विशेष योग्यताओं से सबल था किन्तु सीता के प्रति अनुचित वासना उसके विनाश का कारण बनी। यह पूर्णत. स्पष्ट है कि सारा नाटक विरोधी भावनाओं और विचारों का सघर्ष है।

महावीर चरित के गुण—भवभूति की यह प्रथम रचना है। प्रथम प्रयास मे कला निखरती नहीं है। नाटक कथानक की एकता की दृष्टि *से कवि के प्रयत्न की ओर निर्देश करता है। कवि की सफलता उसके* सुन्दर चरित्र चित्रण मे है। कवि का सारा प्रयत्न राम के आदर्श और सर्वांगपूर्ण चरित्र के निर्माण मे लगा है। युद्ध वीरता तो उनका महान् गुण है। वे अपने शत्रुओं के प्रति भी हानि करने का विचार नहीं रखते हैं।[1] शत्रुओं की वीरता का कथन वे उदाहरण के साथ करते हैं।[2] वे सहृदयता के साथ उनकी हार और अपने व्यवहार पर विचार करते हैं।[3] उन्हें अपनी वीरता पर पूरा विश्वास है।[4] वे युद्ध के नियमों के प्रतिकूल अपने शत्रुओं से कोई लाभ प्राप्त नहीं करना चाहते हैं।[5] शिष्य की दृष्टि से, पुत्र की दृष्टि से और नृपति की दृष्टि

---

[1] म० च० १।३१–३२

[2] म० च० २।३५–३६

[3] म० च० ४।२१, ५।५६

[4] म० च० २।३३,

[5] म० च० ६।४६, ५।५०,

से उनका कर्तव्य पालन श्लाघ्य है।[*] विरोधी चरित्रों के बारे में हम पहिले विवेचन कर ही चुके हैं।

यद्यपि भवभूति राम के दिव्य और अलौकिक रूप से पूर्ण परिचित हैं फिर भी उन्होंने एकाधं स्थलों को छोड़कर सर्वत्र राम को एक मानव के रूप पूर्णतः चित्रित किया है। क्योंकि अलौकिक चरित्र लौकिक जीवों को विशेष रूप से आकृष्ट करने, शिक्षा देने और हृदयगम होने में विशेष सफल नहीं हो सकता है। इस नाटक के कुछ पद्य जो तृतीय और चतुर्थ अंक के हैं, उच्च कोटि के हैं। कतिपय आध्यात्मिक संवाद भी महत्त्वशाली हैं। वीर रस का परिपाक सुन्दर हुआ है। शिव जी के धनुष के खण्डित हो जाने पर लक्ष्मण की दर्पोक्ति—

"दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्यतम्—' जिसमें दर्प शब्दावली से ही टपका पड़ता है।

जामदग्न्य राम को देख कर कहते हैं—

त्रातुं लोकानिव परिणत कायवानस्त्रवेद
क्षात्रो धर्मः श्रित इवतनुं ब्रह्मकोशस्यगुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदयः सञ्चयो वा गुणानाम्
प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माण राशिः॥

महावीर चरित २।४१

अमूर्तपदार्थों को मूर्तरूप देकर सुन्दर चित्र अंकित किया गया है। श्रमण का विन्ध्याटवी का वर्णन अपने क्षेत्र में अद्वितीय है। कवि इस स्थान के पद्यों को उत्तररामचरित में उठाकर रखने का लोभ संवरण नहीं कर सका है—

"इह समदशकुन्ता क्रान्त वा नीरमुक्त,
प्रसव सुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फल भर परिणाम श्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलन
मुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः॥ ५।४०।म० च०

* म० च० १।३८, ४।४२, ४।३९

और भी—

दधति कुहरभाजामत्रभल्लूक,
यूना नुसरति गुरुखिम्त्यानमम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकषाय: स्त्यायते सल्लकी-
नामिभदलितविशीर्णग्रन्थिनिष्यन्द गन्धः ॥म०च० ५।४१

महावीर चरित की त्रुटियां—महावीर चरित की रचना मे कवि को सफलता नहीं मिली है। लबे २ सवाद, बडे२ वर्णनात्मक प्रसग, जिनसे कई स्थलों पर घटनाओं की गति मे अवरोध उत्पन्न हो गया है। पात्रो के चरित्र चित्रणो मे उत्तरोत्तर विकास का अभाव है। मानव हृदय के सूक्ष्म निरीक्षण मे कवि सफल नहीं हुआ है। भाव और भाषा उदात्तता की सीमा से दूर हैं। किन्तु इस नाटक का सबसे बडा दोष यह है कि इसके पात्र कुछ स्थानों पर तो चतुर हैं और शेष सारे नाटक मे वे अविश्वासी, अन्धविश्वासी और हठी है, चरित्र विकार की दृष्टि से केवल परशुराम ही सामने आते हैं। राम तो प्रारम्भ से अन्त तक *आदर्श नायक बने रहते हैं। वीरता, उदारता, सत्यता आदि सभी* दशाओं और रूपों मे विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध मे, सर्वत्र राम आदर्श पुरुष हैं। यही बात नायिका सीता के भी साथ है। मालतीमाधव की तरह का भाव और विचार वैविध्य तथा सघर्ष सीता मे नहीं है। वासना और प्रेम के उतार चढाव और विकास का मालती मे जो रूप है, वह यहाँ नहीं है। मत्री माल्यवान् भी प्रारम्भ से अन्त तक एक ही लकीर पर चलता और एक ही बात सोचता है। मुद्राराक्षस के राक्षस से उसकी तुलना की जा सकती है।

दूसरा सविधानिक दोष यह है कि कवि कही सुनी बातों को भी पुन- विस्तार के साथ कहने मे रुका नहीं है। माल्यवान के बारे मे यह पूर्णतः चरितार्थ होता है। उसके वही उपाय, वही आशाएँ वही निराशाएं ,और भय खेदपूर्ण कहे जा सकते हैं। चतुर्थ अक विष्कमक भी उपयुक्त नहीं है। तृतीय अंक का शब्द युद्ध जो परशुराम और शतानन्द,

जनक, दशरथ, विश्वामित्र इन दो पक्षो मे हुआ एक व्यर्थ का विस्तार ही है। इसे हम लेखक के द्वारा अपने व्याकरण, न्याय, मीमासा, धर्मशास्त्र आदि विषयक ज्ञान के प्रकट करने के लिए निर्मित मानेगें। इससे अविनय की दृष्टि से रगमच मे असुन्दर असुविधा पैदा हो जाती है। एक पात्र और अधिक पात्र वाध्य है वाध्य हो जाते हैं प्रतीक्षा करने के लिए जब तक वक्तापात्र अपनी काव्यमय तर्कविली भाषण के रूप में प्रयुक्त करता रहता है। नाटक की भाषा कठोर, कृत्रिम और कम सुन्दर है। इसमें कई स्थल अनुपयुक्त हैं जिन्हें आसानी से सकेतित किया जा सकता है। जैसे ५/३८ और ७/१६ ॥ डा० भण्डारकर तो महावीर चरित का अरोचक और अपरूप कहते हैं।

उत्तर रामचरित—उत्तर रामचरित भवभूति की कला की सुन्दर–तम सृष्टि कहा जाता है अपने गुणों से यह नाटक नाट्य जगत् की सुन्दरतम सृष्टियों मे से एक है। भवभूति अपने इसी नाटक के बल पर कालिदास के समक्ष आते हैं किसी-किसी आलोचक की दृष्टि से आगे बढ़ जाते हैं।

"उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।"

यह तो निश्चित है कि उत्तर रामचरित के कारण ही भवभूति और कालिदास विषयक तुलनाओ की परपरा चल पड़ी है जो अत्यन्त प्राचीन है।

"कवयः कालिदासाद्याः भवभूतिर् महाकवि."

"तरवः पारिजाताद्याः स्नुहीवृक्षो महातरुः"

आदि विवाद प्राचीन काल से चले आरहे हैं।

उत्तर की कथा वस्तु के स्रोत—उत्तर रामचरित के कथानक के स्रोत रूप मे बाल्मीकि रामायण प्रसिद्ध ही है और कुछ दूर तक हैं भी, किन्तु उत्तर के कथानक मे पद्मपुराण के पाताल खण्ड और रघुवश, अभिज्ञानशाकुन्तल तथा भास के स्वप्नवासवदत्तम् का कुछ विशेष प्रभाव है।

(१) उत्तर का आलेख्य दर्शन नामक प्रथम अ क कालिदास क—
"तयो र्यथा प्रार्थितमिन्द्रियार्थो,
ना से दु प सदूमनु चित्रवत्सु।
प्रासानि दु खान्यपि दण्डकेषु,
सन्चिन्त्यमानानि सुखान्य भूवन ॥'[1]
का विस्तृत रूप है।

(२) सीता और शकुन्तला जब दोनो अपने पुत्रो के साथ पू ए रूप के पति परित्यक्ता है—उस समय कालिदास के राम कहते हैं—
"राजपि वशश्यरवि प्रसूतं रूपस्थितं परयत कीदृशो ऽयम्
गत्त सदाचार शुचे कलक पयोद वातादिव दर्पणस्य ॥[2]
भवभूति के राम—
"यत्साविन्रै र्दीपित भूमिपालै
लोकश्रेष्ठै साधु शुद्ध चरित्रम्।
मत्सम्वन्धात् कश्मला किं वदन्ती
स्याच्चेदस्मिन हन्तधिङ्‌ मामधन्यम् ॥[3]

(३) सीता और शकुन्तला दोनों के पुत्रों से उनके पतियों को भट विना पूर्व कल्पित कारण के आश्रमों मे होती है–न जाने कितने-प्राय १०-१२ वर्षों के बाद। दोनों पिता पुत्रो को देखकर समान रूप से आशंका से अभिभूत और वात्सल्य रस से ओत प्रोत हो जाते है एव बालकों के स्पर्श से महान सुख प्राप्त करते हैं—
"अस्य वालकस्य रूप सवादनी ते आकृति' शाकुन्तलम् ७ अङ्क
"अये न केवलमस्मत् संवादनी आकृति" उत्तर० ६ अङ्क
और भी—
'अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण"–शाकु० ७/११
"अङ्गात् २ स्नुत इव निज स्नह जो देहसार"—उत्तर० ६/२२

---

[1] रघुवश १४/२५ [2] रघुवश १४/३७ [3] उत्तर० १/४२

(४) दोनो कवियो के दम्पति वियोग के महान् दुख सहते हैं विरहातुर होते हैं और जब अचानक मिलते हैं तो शकुन्तला दुष्यन्त को देखकर कहती है—

"न खलु आर्य पुत्र इव"—७/२१ के बाद शाकु०

भवभूति की सीता राम को देखकर कहती है—

'हा कथं प्रभातचन्द्रमण्डला पाण्डुराकृति"

उत्तर० ३/८ के बाद

दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर कहते हैं—

"वसने परिधूसरे वसाना०"—शाकु० ७/२१

उत्तरराम चरित मे तमसा सीता के लिए भी यही कहती है—

"परिपाण्डुदुर्वल कपोल०"—उत्तर० ३/४

भास के स्वप्नवासवदत्तम् का पचम अक जब वासवदत्ता जल गई है, ऐसा प्रसिद्ध था, उदयन वासवदत्ता को स्वप्न मे देखता है, तथा कुछ अस्पष्ट स्वरो मे कहता है, उसी समय वासवदत्ता अकस्मात् पहुँच जाती है और राजा से बात करती है एव उनका हस्तस्पर्श कर लेती है। स्पर्श के होते ही राजा चैतन्य हो उठ बैठते हैं। वासवदत्ता तत्क्षण ही हट जाती है। भवभूति के उत्तररामचरित के ३ अक का निर्माण—सीता और राम का मिलन इसी प्रकार होता है। इसके उपरान्त उदयन और विदूषक का वार्तालाप, सीता और वासन्ती के वार्तालाप की ओर सकेत करता है।

हमारा अनुमान है कि वाल्मीकीय रामायण के साथ-साथ जिसे वीरचरित में भवभूति ने स्पष्ट स्वीकार किया है, उपर्युक्त ग्रन्थो के कथानक और घटनाओं का आधार भी भवभूति को अपने नाटक की वस्तु के लिए प्राप्त था।

कथानक का वैशिष्ट्य—उत्तर रामचरित के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है, कि इस कृति मे कवि ने राम के जीवन का उत्तरार्ध वर्णित किया है। यह नाटक राज्याभिषेक के उपरान्त सीतापरित्याग से

प्रारम्भ होता है और उनके पुनर्मिलन के साथ समाप्त होता है। उत्तर की घटनाओं से सिद्ध है कि कवि को अपने पूर्व नाटक की भाँति इसकी कथावस्तु में स्थान-स्थान पर परिवर्तन नहीं करना पड़ा है। भवभूति का कथानक दो समस्याओं को लेकर चलता है और इन्हीं के समाधान के साथ समाप्त हो जाता है—१.

१—सीता एवं माधवी और प्रिय मित्रों का राम न छोड़ने का साहस और विचार क्यों और कैसे किया ?

२—परित्याग की इन परिस्थितियों के रहते हुए भी पुनः स्वीकार क्यों किया ?

इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भवभूति ने प्रथम तीन अंकों में किया है और फिर उन घटनाओं की उलझी हुई कड़ी का मिलन कराती हैं शेष चार अंकों में है।

कथासार

प्रथम अङ्क—रामराज्याभिषेक के अनन्तर जनक के चले जाने पर सीता उदास हो जाती हैं राम उन्हें सांत्वना देते हैं। इधर सीता के मनोविनोदार्थ लक्ष्मण ने राम के अब तक की जीवन की घटनाओं को लेकर एक चित्रपट तैयार करवाया है। सीता राम व लक्ष्मण के साथ उसे देखती हैं एवं चित्रदर्शन से उत्पन्न हुई भगवती भागीरथी में अवगाहन करने की अभिलाषा व्यक्त करती हैं। चित्र दर्शन के श्रम से थक कर सीता सो जाती हैं। इसी समय दुर्मुख नामक एक गुप्तचर सीता के सम्बन्ध में लोकापवाद का समाचार लेकर राम के पास उपस्थित होता है। इस समाचार को सुनकर राम को पीड़ा होती है। एक ओर राजधर्म का प्रश्न और दूसरी ओर कठोरगर्भा सीता की अवस्था। अन्त में वे अपने कर्त्तव्य-पालन का निश्चय करते हैं। लोकरञ्जन के लिए अपनी प्राणप्रिया का परित्याग करने को कृतसंकल्प वह लक्ष्मण को सीता के निर्वासन का आदेश देते हैं। भागीरथी दर्शन

की इच्छा तो सीता की थी ही इसी इच्छा की पूर्ति के बहाने वह निर्वासित कर दी जाती हैं।

द्वितीय अङ्क—इसमे आत्रेयी नामक तपस्विनी व वनदेवता (वासन्ती) के सवाद माध्यम म कई घटनाओ की सूचना दी जाती है। आत्रेयी महर्षि वाल्मीकि के आश्रम मे रहकर अध्ययन करती थी किन्तु वहाँ अध्ययन सम्बन्धी विघ्न उपस्थित होने से दण्डकवन मे आना पडा है। वह महर्षि वाल्मीकि को किसी देव विशेष द्वारा दिये गये दो अद्भुत बालको की सूचना देती है जो कुश व लव नाम के हैं एव अत्यत कुशाग्र बुद्धि होने से उनके साथ अपने जैसो की साथ साथ पढने की अयोग्यता बतलाती है। वह सीता के निर्वासित की सूचना भी आत्रेयी को देती है एव राम के अश्वमेध यज्ञ के आरम्भ करने का भी समाचार देती है जिसमे राम हिरण्यमयी सीता की मूर्ति से धर्म-चारिणी का काम लेंगे। तत्पश्चात् वह बताती है कि सीता का निर्वासन हो जाने के कारण दु ख स तप्त भगवान वशिष्ठ, माता अरुन्धती और कौशिल्या आदि मातायें दामाद के यज्ञ से लौटन पर अयोध्या न जाकर वाल्मीकि के आश्रम मे पहुँच गई हैं। शम्बूक नामक शूद्र के दण्डकारण्य मे तप करने की सूचना वासन्ती को उसके द्वारा प्राप्त होती है जिससे उसे राम के पुनर्दर्शन की आशा होती है। शम्बूक को खोजते हुये राम दण्डक वन मे प्रवेश कर शम्बूक का वध करते हैं। दण्डकवन मे प्रकृति की शोभा का अवलोकन करत २ राम सीता की स्मृति से अवसन्न हो जाते है। तत्पश्चात् राम पञ्चवटी मे प्रवेश करते हैं।

तृतीय अङ्क—तमसा और मुरला सखियाँ . . . बताती हैं कि सीता जब लक्ष्मण द्वारा . . . निर्वासित हुई तो वे लक्ष्मण के जाने के बाद . . . विह्वल होकर गंगा मे कूद पड़ी वहाँ जल मे लव कुश . . . गंगा . . . पृथ्वी

सीता को रसातल सँभाल कर ले गई और बालकों को गंगा देवी ने महर्षि वाल्मीकि को सौंप दिया। इसके बाद सीता छाया रूप में प्रकट होती हैं। राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं पर वे सीता को देख नहीं पाते। उनके हृदय में सीता विषयक विरह वेदना अत्यंत बढ़ी हुई है। अपने पुराने क्रीडास्थलों को देखकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं तब सीता अपने स्पर्श से उन्हें चेतन करती हैं। यद्यपि राम सीता को देख नहीं पाते पर उन्हें विश्वास हो जाता है कि यह स्पर्श सीता का ही है अन्य का नहीं। बात चीत के प्रसंग में वासन्ती राम को सीता के निर्वासन का उलाहना देती है। राम सीता के शोक में प्रमुक्त कण्ठ होकर विलाप करते हैं।

चतुर्थ अङ्क—वाल्मीकि आश्रम में दो तपस्वी बालक परस्पर बातचीत करते हुये आते हैं। यहाँ वशिष्ठ और अरुन्धती राम की माताओं के साथ पूर्व ही आ चुके थे। इसी समय जनक का आगमन होता है। वे सीता के निर्वासन के कारण अत्यन्त दुःखी हैं। अरुन्धती के साथ कौशल्या उनसे मिलने आती हैं। कौशल्या और जनक परस्पर सान्त्वना प्रदान करते हैं। इसी समय अन्य बालकों के साथ लव का प्रवेश होता है। कौशल्या और जनक को उसे देखकर उसे जानने की उत्कंठा जागृत होती है। लव आकर उनका अभिवादन करता है। वह अपना परिचय वाल्मीकि के शिष्य के रूप में देता है। विप्र वटु लव को इसी बीच अश्वमेध—अश्व के दर्शन करने के लिए बुलाते हैं। लव वहाँ जाकर अश्व रक्षकों की घोषणा श्रवण करता है। उसे सुनकर लव को क्रोध आता है और वह अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लेता है।

पञ्चम अङ्क—लव की बाण वर्षा से सैनिक विचलित हो उठते हैं इसी बीच कुमार चन्द्रकेतु युद्ध क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। वे प्रथम दर्शन से ही सारथि सुमन्त्र से लव की वीरता और क्रोध एवं ओजपूर्ण मुखश्री की प्रशंसा करते हैं। तदनन्तर दोनों का युद्ध प्रारम्भ होता है। लव

जृम्भकास्त्र का प्रयोग करते है। उसे देखकर सुमन्त्र और चन्द्रकेतु दोनो को विस्मय होता है। युद्ध विराम के बाद दोनो मिलते हैं तथा अनुराग का उदभव होता है। बातचीत में ही सुमन्त्र रामभद्र कीचर्चा करते हैं। लव अपने इस कृत्य (अश्व ग्रहण) मे रक्षको की दर्पपूर्ण 'राक्षसी वाणी' को ही कारण बताते हैं। पश्चात लव एव चन्द्रकेतु मे परस्पर दर्पपूर्ण कथन होता है और दोनो युद्ध क्षत्र मे पुन. उतरने के लिये प्रस्तुत होते हैं।

षष्ठ अङ्क—दोनो वीरो (लव तथा चन्द्रकेतु) के युद्ध का वर्णन एक विद्याधर और उसकी स्त्री के सवाद के रूप मे किया गया है। इस युद्ध म वे परस्पर आग्नेय, वारुण और वायव्य अस्त्रो का प्रयोग कर रहे थे। इसी बीच शम्बूक को मार कर लौटते हुए रामचन्द्र युद्ध स्थल मे पहुँचते हैं तथा युद्ध रुक जाता है। लव को देखकर राम वात्सल्य मे भर उठते हैं। चन्द्रकेतु लव के द्वारा प्रयुक्त जृम्भकास्त्र के सम्बन्ध मे राम को सूचित करते हैं यह ज्ञात कर राम को बडा आश्चर्य होता है। तब तक कुश भी प्रवेश करते हैं दोनो राम का अभिवादन करते हैं व राम उनका आलिगन करते हैं। दोनो बालको के दर्शन से राम को सन्देह होता है कि क्या ये सीता के पुत्र हैं। कुश और लव से सीता परित्याग सम्बन्धी रामायण मे कतिपय श्लोक श्रवण कर राम की वेदना और भी जागृत हो जाती है। सेना के साथ लव के युद्ध करने का समाचार सुन कर वशिष्ठ वाल्मीकि, जनक, अरु धती और राम की मातायें वहाँ आती हैं। उनके आने के समाचार से राम को लज्जा व खेद भी होता है और वे बालको के साथ उनका स्वागत करने आगे आते हैं।

सप्तम् अङ्क—एक दिव्य नाटक का अभिनय होता है। परित्यक्ता सीता गगा मे कूद पड़ती हैं। किन्तु एक एक शिशु को गोद मे ले कर भागीरथी और पृथ्वी सोता को जल से बाहर ले प्रगट होती हैं। पृथ्वी राम की कठोरता की निन्दा करती हैं गगा उसका कारण बतलाती हैं।

दोनों सीता को आदेश देती हैं कि तुम इन शिशुओं का तब तक पालन करो जब तक व वाल्मीकि मुनि के संरक्षण में रखने योग्य बड़े न हो जायें। इस दृश्य को वास्तविक समझकर राम शोकावेग से मूर्छित हो जाते हैं। तब नेपथ्य में 'देवि अरुन्धती हम पृथ्वी और गंगा दोनों पवित्र व्रत वाली वधू सीता को आपको अर्पण कर रही हैं। आप हम अनुगृहीत करें।' यह सुनाई पड़ता है। अरुन्धती सीता को लेकर प्रविष्ट होती हैं। सीता स्वामी की परिचर्या कर उन्हें स्वस्थ करती हैं। वाल्मीकि भी लवकुश को समर्पित करते हैं। इसी बीच लवणासुर को मार कर शत्रुघ्न भी आ जाते हैं। चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है।

पात्र परिचय

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
सूत्रधार —नाटक का प्रारंभकर्त्ता रंगमंच का अध्यक्ष	सीता—राजा जनक की पुत्री राजा राम की पत्नी
नट—सूत्रधार का सहयोगी	वासन्ती—वन देवता, सीता की सखी
राम —(रामचन्द्र) अयोध्याधिपति सूर्यवंशीय राजा।	आत्रेयी—एक ब्रह्मचारिणी
लक्ष्मण —राम के छोटे भाई	तमसा—एक नदी की अधिष्ठात्री देवी।
शत्रुघ्न —लक्ष्मण के छोटे भाई	मुरला—एक नदी की अधिष्ठात्री देवी।
जनक —राम के श्वसुर	भागीरथी—गंगा जी
अष्टावक्र —एक मुनि	कौशिल्या—राम की माता
वाल्मीकि —रामायण के रचयिता	पृथ्वी—सीता की माता
सौधातकि—वाल्मीकि का शिष्य	अरुन्धती—वशिष्ठ मुनि की पत्नी
कुशलवौ—राम के पुत्र	विद्याधरी—विद्याधर की पत्नी
चन्द्रकेतु —लक्ष्मण-पुत्र	

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
सुमन्त्र:—सारथी	प्रतीहारी -अन्त:पुर की द्वारपालिका
विद्याधर:-देवयोनि विशेष	
कञ्चुकी—अन्त पुर मे रहने वाला वृद्ध ब्राह्मण	
दुर्मुख —गुप्तचर	
शम्बूक —शूद्र तपस्वी	
मुनि कुमार और सैनिक आदि।	

नाटक की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि—उत्तररामचरित करुण रस का नाटक है। कवि अपने कथानक और रस को पृष्ठभूमि को तैयार करता हुआ चलता है। वह दर्शको के हृदय मे-जो कुछ प्रवेश कराना चाहता है, उसकी पृष्ठभूमि पहिले स ही तैयार कर देता है। कवि एक महान् मनोवैज्ञानिक है। जब नाटक प्रारम्भ होता है तो सूत्रधार कहता है कि यह राम के राज्याभिषेक के उत्सव का समय है, किन्तु सभी कर्मचारी शान्त और चुप क्यो हैं। नगरी प्रसन्न होने के स्थान पर विषादमग्न सी है। कही कोई चहल पहल नही। इस मौन और शान्ति का कारण जानने को हम भी उत्सुक हो उठते हैं। क्योकि रामकथा का पूर्व संस्कार और परिचय होने से हमे शंका होने लगती है कि क्या सीता परित्याग हो चुका ? किन्तु नट सूचना देता है कि घर के लोग ऋष्यशृंग के आश्रम मे यज्ञ समारोह मे सम्मिलित होने के लिए चले गए हैं।

राम के लिए सामाजिक के हृदय में सहानुभूति पैदा होती है कि १४ वर्ष के बाद वन से लौट आने पर भी वे अपने परिवार के लोगो के मध्य रहने का आनन्द नही प्राप्त कर सकते हैं। यही गर्भधारिणी सीता का भी समाचार है। नगरी मे कोई उत्सव नही, कोई सजावट नही, नया नरेश, बेचारे का जीवन नीरस हो गया। कोई भी गुरुजन नगर

मे नहीं रहे। सभी बाहर चले गए हैं। इसीलिए सूत्रधार राम का मनोरंजन करने के लिए राजभवन जाना चाहता है किन्तु वह शब्दों के प्रति बहुत जागरूक रहना चाहता है क्योंकि लोग स्त्री और वाणी के प्रति बड़े दोषदर्शी होते हैं। सीता के प्रति अग्नि परीक्षा हो जाने पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता है।

राम और सीता की ऐसी दशा और उनके चारों ओर दुखद वातावरण और परिस्थितियों की घटा घुमड़ी देखकर हमारा हृदय करुणा से भर जाता है। राम की प्रियतमा बहुत दिनों के बाद मिली थी जो इस समय पूर्णगर्भा भी हैं—उसी के प्रति लोगों की दुर्भावनाएँ ! राम के हृदय को शोकाकुल कर देंगी। उधर बेचारी निर्दोष सीता !

जैसे ही प्रमुख अंक आगे बढ़ता है, हम अपने को विषाद से आवृत और अकेले अन्धकार में पाते हैं। जब हम राम और सीता को एक दूसरे को आनन्दित करने का प्रयत्न करते हुए पाते हैं तो अनुभव होता है कि प्रेमियों का वियोग प्रत्येक दशा में असह्य होता होगा। सीता का भी यही कहना है। हम विचार करने लगते हैं कि यदि वही सीता को अपने भावी परित्याग का संकेत प्राप्त हो जावे तो उनकी क्या दशा हो जायगी ? इसी समय अष्टावक्र जी आते हैं। भगवती सीता के पूछने पर कि क्या हम लोगों को भी गुरुजन याद करते हैं, अष्टावक्र कहते हैं कि हे देवि वशिष्ठ ने आपके लिए कहा है—

"हे सौभाग्यवति ! भगवती वसुन्धरा ने आप को जन्म दिया है, प्रजापति के समान राजा जनक आपके तात हैं और आप उन नृपतियों की कुल वधू हैं जिनके कुल में सूर्य और हम गुरु हैं।" उत्तर० १।९

इस पद्य में सीता की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए वशिष्ठ वीरपुत्र प्रसविनी होने का आशीर्वाद देते हैं। राम के लिए वशिष्ठ ने कुछ भी नहीं कहा। यह दर्शक के लिए कठोर संकेत है कि राम के भाविकार्य (सीता परित्याग) को दिव्य ज्ञान वाले वशिष्ठ जानते हैं अतः उन्हें आशीर्वाद देने में नहीं सम्मिलित किया। हमें राम के प्रति सहानुभूति

और सीता के लिए भय हो जाता है। राम वशिष्ठ के लिए उत्तर देते हैं कि प्रजा के आराधन के लिए मुझे सीता छोड़ने में भी व्यथा न होगी। १।१२।। हमारा मन दृढ़ हो जाता है और हम सीता के विषय में विशेष द्रवित होने लगते हैं। इसी समय लक्ष्मण आते हैं और राम के पूछने पर कहते हैं कि सीता अग्नि परीक्षा तक के चित्र हैं। तब राम के साथ चिल्लाकर घोषित करने लगते हैं कि जन्म से ही पवित्र को अग्नि आदि क्या पवित्र करेंगी। १।१३।। आदि सब में आनन्द का बादल और व्यथा की फुहारों से शान्ति की बदली न जाने कहाँ उधर उड़ सी जाती हैं। राम विवाहोत्तर कालीन सुखमय दिवसों को याद करते हैं। १।१८,१९।। वे सुखमय अतीत की वर्तमान से तुलना करते हैं। सीता को अचानक भय होता है कि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो मैं आपसे निकलकर पुन पृथक् हो रही हूँ। राम १।३३ में लक्ष्मण को चुप कर रहे हैं क्योंकि उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों पिता का वियोग पुन लौट आया है। दर्शक का हृदय द्रवित होने लगता है और सहानुभूति भी बढ़ती है। सीता अब श्रान्त हैं फलत सो जाती हैं। उन्हें नियति के काले पर्दे के पीछे किस भयानक भविष्य की रचना हो रही है इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। अतीव सोना। इसी समय दुर्मुख वज्रपात सा भयानक समाचार लिए खड़ा है जो सीता सी सुकुमार लतिका के ऊपर प्रपात दशा में टूटेगा। यह है, भाग्य का खेल—नियति नटी का नाटक। जिसके कारण अतीव और निर्दोष दुःख के कूप में डालकर डूबने के लिये छोड़ दिये जाते हैं। दर्शक—नियति के ऊपर क्रुद्ध हो उठता है। वह चाहता है कि दुर्मुख का मुख बन्द हो जाए, वह मूक हो जाए।

राम के 'विरह' शब्द के साथ ही 'पहुँचा' शब्द को सम्बन्धित करता हुआ दूत वह भयानक घड़ी उपस्थित करदेता है जिसका हमें बहुत पहिले से डर था। रथ तैयार है, सीता उस पर चढ़कर लक्ष्मण के साथ वन विहार के लिए चलीं। उन्हें क्या ज्ञात ? दर्शक चिल्लाकर उन्हें वस्तुस्थिति का

ज्ञान कराकर रोकना चाहता है किन्तु इसी समय यदनिका पात हो जाता है और हम भी नियति को कोसते हुए चुप हो जाते हैं।

उत्तर का परिवर्तित और परिष्कृत कथानक—कवि ने वीरचरित में स्पष्ट शब्दों में कह दिया है, कि वह वाल्मीकि रामायण कथानक ले रहा है। किन्तु राम के जीवन और कार्यों का जो प्रदर्शन कवि नाटक में करता है वह रामायण की कथावस्तु से अन्तर रखता है। उसने सफल कलाकार की भाँति प्रबन्धकाव्य की वर्णनात्मक कथा को लेकर नाटकीयता के साँचे में ढालने के लिए मनोऽनुकूल संस्कार किये हैं। इन संस्कारों ने कथा को एक नवीन ही रूप दे दिया है। हम प्रधान-प्रधान विभेदों पर विचार करेंगे।

१—नाटक में राम और सीता का पुनर्मिलन दिखाया गया है, जब कि रामायण में राम के कहने और वाल्मीकि के आदेश देने पर सीता अपने शुद्ध चरित्र का प्रमाण देने के लिए प्रस्तुत होती हैं तो उनका उदात्त हृदय अपमान न सह सकने के कारण माता पृथ्वी से शरण माँगता है और पृथ्वी के गर्भ में शरण पा भी जाता है। रामायण की कथा दुखान्त है। किन्तु भारतीय परम्परानुसार दुखान्त नाटक सम्भव नहीं, फलतः कवि उसे सुखान्त करदेता है। इसके प्रमाण में इसके पास पद्मपुराण के पाताल खण्ड का ४७ वा अध्याय है।

> रामस्तामागतां दृष्ट्वा जानकीं प्रेम विह्वलाम्
> साध्वित्वया सहेदानीं कुर्वे यज्ञसमापनम् ॥
> समागतां वीक्ष्यपत्नीं रामचन्द्रस्य कुम्भज
> सुवर्णपत्नीं धिक् कृत्वातामघात् धर्म चारिणीम् ॥

> रामस्तदा यज्ञमध्ये शुशुभे सीतया सह,
> वाग्यानुगतो यद्वच्चन्द्रशीव सरघृत्तमः।
> एवं जनक पुत्र्यासौ हयमेधं त्रयं चरन् त्रैलोक्ये
> कीर्तिमतुलां प्रपेदेवै सुदुर्लभाम् ॥

२–पद्मपुराण, लव और कुश एव शत्रुघ्न तया पुष्कल (भरतपुत्र) जो राम की अश्वरक्षक सेना के सेनापति थे, के बीच एक युद्ध का वर्णन करता है, जिसमे राम पक्ष के सभी वीर पराजित हो गये हैं। बाल्मीकि रामायण इस विषय में मौन है। भवभूति राम पक्ष की ओर से केवल चन्द्रकेतु को उपस्थित करता है। लव और चन्द्रकेतु में समान बल वीरता और शौर्य कवि ने दिखाया है। साथ ही दोनों को शीलवान् भी चित्रित किया है।

३–बाल्मीकि रामायण मे सीता परित्याग काल मे गर्भ के कोई भी चिन्ह स्पष्ट नहीं प्रदर्शित किये गये हैं। रामायण के अनुसार जब लक्ष्मण सीता को छोड़कर चल देते हैं तो सीता ऊँचे स्वर से करुण क्रन्दन करती है। विज्ञप्त महर्षि बाल्मीकि आते हैं और मधुर शब्दों मे सान्त्वना देकर सीता को पुत्रीवत् अपना कर अपने आश्रम मे लिवा ले जाते हैं। आश्रमस्थ तापसियों को सीता की देख रेख और सुख का भार विशेष रूप स सौंप दिया जाता है क्योंकि बाल्मीकि जी रघुकुल वधू को पहिचानते हैं और उनके सारे महत्वों से परिचित हैं। महीनों के उपरात सीता दो बालकों को जन्म देती हैं। उत्तर में भवभूति ने सीता त्याग के समय सीता को पूर्णगर्भा चित्रित किया है जिनका प्रसव काल सन्निकट है। ऐसा करने में भवभूति दर्शकों की सहानुभूति सीता के प्रति अधिक आकर्षित कर सके हैं। लक्ष्मण के छोड़कर जाते ही सीता को प्रसवकाल की वेदना से अत्यन्त पीडित दिखाकर कवि ने उन्हें गगा में कूदते चित्रित किया है। वहीं पर वे दो बालकों को जन्म देती हैं। गगा और पृथ्वी सीता की देख रेख करती हैं क्योंकि प्रथम अंक में राम ने इसके लिए इनसे निवेदन कर दिया था। सीता पृथ्वी लोक में १२ वर्ष तक रहती हैं। बालक तो दुग्ध छोड़ने के उपरान्त ही बाल्मीकि आश्रम में विद्याध्ययन के लिए भेज दिये गये थे।

४–बाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ने सीता त्याग के बहुत दिन बाद शत्रुघ्न को लवणासुर के मारने के लिए भेजा है। शत्रुघ्न

मथुरा जाते हुये एक रात बाल्मीकि आश्रम मे ठहरते हैं तथा सीता एव लवकुश को देखते हैं, पहचान भी लेते हैं। भवभूति ने 'उत्तर' में सीता त्याग और शत्रुघ्न का लवण के वध के लिए मथुरा गमन साथ साथ दिखलाया है

५—भवभूति ने वाल्मीकि की रामकथा के रूप में कतिपय परिवर्तन अपनी राम के प्रति श्रद्धा और आदर्श रामचरित के कर्त्ता होने के कारण किये हैं। जैसे— (अ) भवभूति ने बिना वशिष्ठ और गुरुजनो की सम्मति से त्यागी गई सीता का अकन इस ढग से किया है कि जिससे राम पर आक्षेप न हो सके, इसके लिए उन्होंने वशिष्ठादिकों को अयोध्या से दूर स्थित दिखाया है जिसके कारण अनुमति लेना सम्भव नहीं रहा।

(ब) भवभूति ने उत्तररामचरित के अन्त मे सीता को पाताल न प्रेषित कर राम और सीता का पुनर्मिलन उपस्थित किया है। यह उनके भक्त हृदय की उपज है। साथ ही, हिन्दू नाट्यशास्त्र के अनुसार सुखान्त ही उपयुक्त भी था।

उत्तररामचरित का प्रथम अङ्क, जिसका अधिकतम भाग चित्र-दर्शन से व्याप्त है, भवभूति की कल्पना और कला कुशलता का प्रमाण है। इनकी कल्पना शक्ति अद्भुत है। यद्यपि चित्रदर्शन अङ्क का सूक्ष्म सकेत कालिदास ने रघुवश (१४/२५) मे दिया है, किन्तु भवभूति ने इसका पूर्ण विकास वर्णनात्मक कथोपकथन के रूप मे, जो कि कोमल भावनाओ को व्यक्त करने मे सक्षम है तथा उदात्त विचारों से ओतप्रोत हैं एव मधुरतम गार्हस्थ्य सुखानुभूतियो का निदर्शन है, उपस्थित किया है।

द्वितीय अङ्क मे वासन्ती के साथ आत्रेयी के प्रवेश का दृश्य पूर्णत: कवि कल्पना प्रसूत है। इस अक में प्रकृति चित्रण—दण्डकारण्य के सुन्दर और भयानक दृश्य, पर्वत, वन, नदी और जीव-जन्तुओं के सजीव वर्णन सहृदयो के सामने स्पष्ट चित्र उपस्थित करने मे सक्षम और

अनुपम हैं। भवभूति इस क्षेत्र में अद्वितीय हैं। तृतीय अङ्क करुण रस के परिपाक का उत्कृष्टतम अङ्क है। रससिद्ध कवि की कल्पना और कला की यह मौलिक देन है। कवि मानव मस्तिष्क की कार्य सरणि का पूर्ण ज्ञाता है। मानवीय सभी भावनाओं की अनुभूति में समर्थ कवि, घटनायें नाममात्र की होने पर भी, गाईस्थ्य जीवन के सुखमय वातावरण में पले आदर्श प्रेमी और प्रियतमा का युवावस्था में ही अन्ततः वियोग विवश वियोग-चित्रित कर, सहृदयों के हृदयों को द्रवित कर देता है। निरपराध कुसुम कोमल कलेवरों को कष्ट और सन्ताप की चरम सीमा में फेंक दिया जाना मानव हृदय की दुर्बलता को दिखला देता है।

चतुर्थ अङ्क जिसमें जनक, कौशिल्या, वशिष्ठ और अरुन्धती आपस में वाल्मीकि आश्रम में मिलते दिखाये गये हैं, कवि कल्पना प्रसूत है। यह नाटकीय विधान रामायण, पद्मपुराण या अन्य काव्य ग्रन्थों में कहीं भी संकेतित नहीं है।

उत्तररामचरित के उच्च दार्शनिक विचारों और गम्भीर भावों से भरे होने के कारण विदूषक पात्र का न रखना, कवि का एक विशेष पग इस दशा में बढ़ा हुआ दिखाई देता है।

पञ्चम अङ्क की कथावस्तु यद्यपि भवभूति ने पद्मपुराण से ली है फिर भी उन्होंने अपने मनोनुकूल परिवर्तन और परिवर्धन कर विषय को वह रूपरेखा प्रदान कर दी है कि पूरी कथावस्तु एक नवीन रूप में सामने आती है। कोई भी लेखक भवभूति के पहिले, राष्ट्र के अमर नेता राम के चरित के विषय में कटु आलोचना करने का, भवभूति के समान साहस नहीं कर सका है।

"वृद्धास्ते न विचारणीय चरिता" ५/३४ में लव और ३/२७ में वासन्ती 'अयि कठोर यशः किलते प्रियम्" राम के चरित की भरपूर आलोचना करते हैं। भवभूति ने—कालिदास की भाँति "अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात् यशोधनानां हि यशोगरीयः" (रघुवंश, १४ वां सर्ग)

सीता परित्याग का प्रश्न हल किया है। छठे अङ्क में कवि ने पदपुराण द्वारा कथित कथावस्तु को एक ओर रखकर लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का, जो कल्पना परिपूर्ण वर्णन किया है, वह प्रशंसनीय है। उनके लम्बे और भड़कीले समास, ओजगुण विशिष्ट पदावली, पाठक के मस्तिष्क को झनझना कर युद्ध स्थल की भयकरता का साक्षात्कार करा देते हैं। राम का अपने दोनों पुत्रों से मिलना, जिन्हें वे पहिचानते भी नहीं हैं, बहुत ही सुन्दरता से चित्रित किया गया है। सुन्दर भावों और विचारों से भरा यह अङ्क कवि द्वारा पुरानी वस्तुओं को नये रूप में रखे जाने का एक अनुपम उदाहरण है।

इन बातों से, कथावस्तु की एक रूपता कहीं भी खण्डित नहीं होने पाई है। सभी बातें एक ही कथानक की कड़ी में गुथी हुई हैं।

भवभूति ने राम के चरित्र को मानवोचित साँचे में ढाला है, जब कि बाल्मीकि और कालिदास राम को प्राय: देवता के अवतार के रूप में पृथ्वी के प्राणियों को सुख देने के लिए आया कह कर अति मानव रूप में चित्रित करते है। भवभूति के नाटकों में राम—मनुष्य के रूप में मनुष्य की कमजोरियों को लिये हुये-आते हैं। भवभूति अपने पूर्व कालीनों के अन्ध श्रद्धालु होकर अनुकरण मात्र करने वाले नहीं थे और न वह महत् मन्यता के साथ उनकी अवहेलना ही करते थे। साहित्य में प्रस्तुत हुयी भवभूति की वस्तुएँ मौलिकता की पृष्ठभूमि पर आधारित भी प्रतीत होती हैं।

शकुन्तला के सातवें अङ्क का दृश्य, जब दुष्यन्त अपने पुत्र से मिलता है जिसे वह अपने पुत्र के रूप में अब तक नहीं जान सका है, सोचता है कि यह मेरा पुत्र है या नहीं? किन्तु आगम प्रमाणों से उसे निश्चित हो जाता है कि यह मेरा ही पुत्र है, यह दृश्य भवभूति ने बहुत ही आकर्षक ढग से उत्तररामचरित के छठें अंक में आपेक्षित समयानुसार और स्थानानुसार परिवर्तन और परिवर्धन के साथ दिखाया है। सप्तम अङ्क की कथावस्तु, जहाँ सीता देवी मुनियों के समक्ष उपस्थित

की गई है, नाटककार ने रामायण से लिया है किन्तु भवभूति की मौलिकता ने उसे एक नया ही रूप दे दिया है। भरत के द्वारा शिक्षित मानो अप्सरायें ही गंगा, पृथ्वी और सीता का अभिनय करती हैं। वस्तुत., रामचरित को भवभूति ने ही सर्व प्रथम नाटकीयता प्रदान की है।

भवभूति से उत्तर काल के लेखक सदैव भवभूति के कृतज्ञ रहेंगे। भवभूति ने राम कथा ऐसे सुन्दर कथानक का प्रवेश साहित्य के नाटकीय क्षेत्रमें करके पथ प्रदर्शन किया। भवभूति का यह कहना, कि उसने रामायण की कथा को ऐसा नाटकीय रूप दिया है, जो कि एक सिद्ध कलाकार की सृष्टि की समता रखता है, असत्य नहीं है। उनकी कृतियाँ भारत ही नहीं, विश्व के साहित्यिकों को निर्मल आनन्द प्रदान करने में सक्षम हैं।

उत्तर रामचरित के कथानक का विकास

नाटक के नाम से ही प्रकट होता है कि यह राम के उत्तर कालीन जीवन चरित से सम्बन्धित है। लंका विजय से लौटने और राजगद्दी पर अयोध्या में आरूढ़ हो जाने के बाद की घटनायें इसमें ग्रथित की गई हैं। इस उत्तर भाग के जीवन में सर्व प्रधान और महनीय घटना है सीता का परित्याग—जो उनके व्यक्तिगत और समष्टिगत दोनों जीवनों में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसी घटना के आधार पर और बीज पर उनके इस महान नाटक का इतिवृत्त विकसित हुआ है।

सूत्रधार और उसके सहयोगी के प्रथम अङ्क के सम्वाद यह सिद्ध करते हैं कि सीता की आचार पवित्रता के विषय में अयोध्या के नागरिकों में प्रवाद फैल रहा है, जिससे राजा अभी बिल्कुल अपरिचित है।

अष्टावक्र के सन्देश वाला प्रथम दृश्य, जिसमें राजा के लिए अपने सुखों का बलिदान प्रजा के कल्याणार्थ करना आदर्श कर्त्तव्य

कहा गया भगवान राम के द्वारा किए गए सीता परित्याग के हेतु पृष्ठभूमि की उपयोजना मात्र कहा जा सकता है जिसमें राम को केवल प्रजा की प्रसन्नता के लिए स्वकीय अशेष सुखों के विनाश क उपेक्षा कर सीता के निर्मल चरित्र का ज्ञान रखते हुए भी सीता परित्याग के लिए कृत निश्चय होना पड़ा।

दूसरा दृश्य, जिसमें लक्ष्मण—राम और सीता के विगत जीवन चरित के चित्रों के दिखाने का प्रबन्ध करते हैं तथा सीता अपने पति से दूर विरह और वियोग सहती है, नाटक में करुण रस का बीज सा बोता है। सीता दण्डक वन और भागीरथी को देखने के हेतु प्रयाण करने की प्रबल इच्छा रखती है। राम, सीता परित्याग के विषय में बहुत चिन्ताशील हैं और वे इस उपस्थित अवसर को ही सीता परित्याग का सबसे सहज अवसर समझ कर, निर्दोष पत्नी को उसे बिना सूचना दिये ही परित्यक्त कर देते हैं, वन भेज देते हैं, यह नेता के चरित्र में एक विचारणीय वस्तु है। यह दृश्य इसलिए महत्व पूर्ण है कि यह दो नाट्य प्रयोजनों को पूरा करता है। सर्व प्रथम यह भगवान राम के विगत चरित के बारे में कुछ संकेत करता है, जिससे महावीरचरित से राम के जीवनचरित की 'उत्तररामचरित' से एक कड़ी जुड़ जाती है। द्वितीय यह दृश्य भगवान राम के दाम्पत्य जीवन का, जो प्रेम और वैभव से भरा अत्यन्त सुखमय है तथा जो राम के विरह में सीता को चित्र दर्शन म भी व्याकुल कर देता है, का चित्रण करता है। दोनों अनन्य प्रेमी हृदय वियोग के भयंकर दिनों के शिकार बनते हैं। उनका परस्पर आकर्षण और पवित्र प्रेम धन्य है। इस दृश्य ने दर्शकों को राम के महान त्याग का अनुभव कराने में जो वे अपनी प्रजा की प्रसन्नता के लिए करते हैं—बहुत ही सहायता दी है। राम का आदर्श त्याग और उनका महान् विरह तथा उसकी अभिव्यञ्जना इस दृश्य के ही साहाय्य से

सहृदय हृदय में सरलता से प्रवेश कर जाती है। प्रथम अङ्क सीता के साथ ही समाप्त हो जाता है और कार्य को आगे बढ़ाकर द्वितीय अङ्क में लाता है। दर्शक सीता के विषय में चिन्तित हो उठता है कि आगे उन्होंने क्या किया ? उनका क्या हुआ ? और प्रार्थना करने लगते हैं कि कोई ईश्वरीय शक्ति उन्हें इस महान विपत्ति में सहारा दे। इस प्रकार से सीता व राम दोनों दर्शकों की सहानुभूति के पात्र हो जाते हैं।

द्वितीय अङ्क में आत्रेयी, जो कि वाल्मीकि आश्रम से आई है जनस्थान की वन देवी वासन्ती से कहती है कि किस तरह दो बालक जिनके पिता आदि का पता नहीं है अज्ञात स्वर्गीय व्यक्ति से वाल्मीकि आश्रम में उपस्थित किये गये हैं। वाल्मीकि ने उनका क्षत्रियोचित सस्कार किया है। बालकों ने अपनी मेधा शक्ति से सभी आश्रम-छात्रों को पराभूत कर दिया है। वाल्मीकि देवी सकेत से कवि हो गये हैं और राम चरित के गठन में सलग्न हैं। आत्रेयी वासन्ती को यह भी सूचित करती है कि राम ने सीता का परित्याग कर दिया और अश्वमेध यज्ञ करने का अनुष्ठान भी किया है। वे शूद्रक बध के लिए अयोध्या से दण्डक वन की ओर प्रस्थित हो चुके हैं। वासन्ती दर्शकों को बताती है कि शम्बूक पचवटी में तप कर रहा है परिणाम स्वरूप दर्शक अपने को अग्रिम दृश्य के लिए उत्सुक पाते हैं। यह दृश्य प्रथम अङ्क की घटनाओं से पूरे बारह वर्ष बाद और अयोध्या से बहुत दूर होने जा रहा है।

नाटककार ने 'यूनिटी आफ टाइम एण्ड प्लेस' का ध्यान बिलकुल ही नहीं रखा है। यह सूचित कर देना आवश्यक है कि सस्कृत नाटककारों का बहुमत स्थान और समय की एकता के प्रति बहुत ही कम उत्तरदायी रहा है।

द्वितीय अक की घटनाएँ सख्या में बहुत ही कम हैं तथा उनका महत्व भी कम है। जहाँ तक कथावस्तु के विकास का सम्बन्ध है,

शम्बूक को दण्ड देना और उसका पुन: देवयोनि में परिवर्तित होना मुख्य कथावस्तु का कोई भाग नहीं है। हाँ, उसका महत्व केवल जनस्थान के वन वैभव की ओर संकेत करने में है, जिससे कवि को अपने प्रकृति प्रेम के प्रदर्शन और वर्णनात्मक शक्ति के प्रयोग करने का अवसर मिला है। सम्भवत कवि ने इसीलिए इस पात्र को रंगमंच में उपस्थित किया है। शम्बूक का नाटकीय महत्व केवल इतना ही है कि वह आत्रेयी की सूचना और राम के पंचवटी में स्थित होने के बीच एक सम्बन्ध जोड देता है।

तृतीय अंक जिसमें दो नदियाँ मानवीकृत बात करती हैं कि सीता के दो बालक उत्पन्न हुये हैं जिन्हें बाल्मीकि आश्रम में पहुँचाया जा चुका है तथा सीता पृथ्वी माता के लोक में रहती हैं। वे राम के पंचवटी में आने के कारण अदृश्य रूप में राम के शोकावेग के समय जनस्थान में रक्षणार्थ उपस्थित रहती। पंचवटी का पूर्व परिचित दृश्य, कथानक को जहाँ से आत्रेयी ने छोड़ा था, आगे बढ़ाता है। सीता का छाया रूप में राम से मिलन दोनों के वास्तविक पुनर्मिलन के लिए पथ प्रशस्त कर देता है। सीता अपने पति के विरह विलापों को सुनती है एवं उनका हृदय प्रभावित हो स्वच्छ हो जाता है। सीता अपने पति की निर्दोषिता और प्रेम में न्योछावर हो जाती है और मनोमालिन्य निर्मल हो जाता है। सीता का राम के प्रति प्रेम असीमता को प्राप्त करता है। यही इस तृतीय अङ्क का उद्देश्य है। सीता को इस भाँति अपने प्रिय के विरह विलापों को सुनने के लिए छाया रूप से प्रस्तुत करना, अभिज्ञान शाकुन्तलम् की सानुमती अप्सरा के समान दुष्यन्त के विहारोपवन में शकुन्तला के प्रति उसके विचार जानने के लिए उपस्थित होने के समान है। शकुन्तला का सर्वोत्कृष्ट प्रतिबिम्ब (सानुमती) दुष्यन्त से शकुन्तला के विषय में उसकी निजी धारणा सुनता है और अज्ञानवश प्रियतमा त्याग की घटना को सुनकर शकुन्तला से जाकर कहता है। फलत शकुन्तला अपने मनोमालिन्य को भुलाकर पुन पति से मिलने को उत्कण्ठित हो उठती है। लेखक का

यह अत्यन्त सुन्दर सगटन रहा जो उसने सीता को राम से छाया रूप म पचवटी म मिलाया है। यहाँ पर इस दम्पति ने चौदह ग्रीष्मे आनन्द के साथ बितायी थी। यहाँ उन्होने प्रकृति के दृश्यो तथा पारस्परिक प्रेम का आनन्दोपभोग किया था, इसके लिए कवि की नाट्य कुशलता की हम प्रशसा करते हैं। पचवटी के विकसित वृक्ष, विहग कुल-कलरव और क्रीडा निमग्न मृग आदि सीता को स्मृति में छा जाते हैं। राम भी उन पूर्व परिचित दृश्यो को देखकर विह्वल हो उठते हैं तथा सीता का सहवास स्मरण कर चेतनाविहीन हो जाते हैं, सीता के स्पर्श का अनुभव करते हैं और भावित होते हैं—

इस प्रकार स दोनो के पुनर्मिलन की बाधायें दूर कर दी गई हैं।

कुशल नाटककार न दोनो के मिलन का स्थान, महान हर्ष का यहाँ सुअवसर वाल्मीकि आश्रम म ही सयोजित किया है। यहाँ कौशल्या, वशिष्ठ, अरुन्धती आदि सभी उपस्थित हैं। ये लोग ऋष्यशृग के यज्ञ स अयोध्या न लौटकर यही ठहरे हुए थे। भाग्यवश सीता और राम के पुनर्मिलन से सम्बन्धित एव उत्कठित सभी व्यक्ति यहाँ उपस्थित थे। इस स्थान से बढकर सुन्दर और कौन स्थान हो सकता था। चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अक की सभी घटनाएँ यह स्थान पाती है। यहाँ पर जनक, कौशल्या, राम, लव, कुश, चन्द्रकेतु और सीता आदि सभी का विभिन्न कार्यकलापों वश उपस्थित होना वैविध्य के साथ साथ अत्यन्त कलात्मक हुआ है। यह सम्मिलन मानव भावनाओं के विविध रूपों—प्रेम, क्रोध, वात्सल्य, करुणा आदि के साधारणीकरण के साथ साथ सम्पन्न हुआ है। सभी दृश्य बडी सफलता और कला के साथ सगठित हुये हैं जो सहृदय को रस सिक्त कर देते हैं। सारा अन्तिम अक पुनर्मिलन की घटनाओ से सम्बद्ध हैं।

"कथा संविधान का कलात्मक वैशिष्ट्य"

नाटककार भवभूति ने दो नाटको के निर्माण काल के बीच मे (महावीर चरित और उत्तररामचरित) यथेष्ट मध्यान्तर लिया है,

जिसका प्रमाण उत्तररामचरित की पूर्णता है। यह नाटक कवि की प्रौढ़ प्रतिभा का परिचायक है। उत्तररामचरित के सप्तम अङ्क के बीसवें श्लोक में कवि स्वयं इस बात को स्वीकार करता है कि इस मध्य काल में कवि ने अभ्यास और साधना की है। सम्भवतः उसने और भी अन्य रचनायें की होंगी जो हमें आज प्राप्त नहीं होतीं। यहां हम भवभूति की उस अमर और रस सिद्ध कृति के बारे में विचार करेंगे, जो प्राचीन और अर्वाचीन दोनों युगों के समालोचकों द्वारा कालिदास की कृतियों की तुलना में रखी जाती रही हैं। भवभूति के कुछ प्रशंसकों का तो यहां तक कहना है कि उत्तररामचरित में भवभूति कालिदास से भी आगे बढ़ गये हैं—

"उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"

भवभूति की कलात्मक विशेषताओं को अनेक रूपों में देखा जा सकता है—

१—नाटक के नाम से पता चलता है कि यह राम के जीवन के उत्तरार्द्ध से सम्बन्धित है जो राज्याभिषेक और सीता परित्याग से प्रारम्भ होकर उनके पुनर्मिलन पर समाप्त होता है। उत्तर की कथावस्तु और घटनाओं से सिद्ध है कि कवि को अपने पूर्व नाटकों की भाँति कथावस्तु के प्राप्त स्रोतों में कथावस्तु सम्बन्धी कोई विशेष परिवर्तन या सम्वर्धन करने के हेतु परिश्रम नहीं करना पड़ा है।

विज्ञ सामाजिक के मन में यह प्रश्न उठता है कि सीता ऐसी धर्मपत्नी का त्याग राम ने कैसे किया, जब कि उनके मन से संदेह का आक्षेप मल सीता अग्नि परीक्षा के समय ही नष्ट हो चुका था, तथा परित्याग के बाद उन्हीं परिस्थितियों के रहते हुये भी सीता को पुनः कैसे स्वीकार किया। इन्हीं प्रश्नों के समाधान में कवि ने अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। कालिदास के दुष्यन्त ने अभिज्ञान शाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में शकुन्तला का प्रत्यक्ष अनादर किया था और पुनः जब वे दोनों सप्तम अङ्क में मिलते हैं तब शकुन्तला अपने शकुन्तला होने का कोई भी

प्रमाण नहीं रखतीं है, केवल सानुमती का सन्देश और उधर दुष्यन्त का दुर्बल शरीर दोनों के प्रेम के साक्षी हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल के सप्तम अंक में दुष्यन्त शकुन्तला से क्षमा कर देने को कहता है किन्तु शकुन्तला तो उसे पहले से ही क्षमा किये हुए हैं। शकुन्तला के इस आचरण के लिए कश्यप के आश्रम का स्वर्गीय शान्त वातावरण भी कारण हो सकता हैं, जहाँ के सिंह भी शान्त हैं। कण्व के आश्रम में तो क्षुब्ध सांसारिक वातावरण था जहाँ मत्त गज और भ्रमर अव्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं। भवभूति अत्यन्त सीधे सादे ढंग से वियोग और मिलन पसन्द नहीं करते हैं, उनके सामने एक मनोवैज्ञानिक समस्या थी, जिसका समाधान भवभूति ने अपने ढंग से प्रथम तीन अंकों में किया है। शेष चार अंकों में उन घटनाओं की उलझी हुई कड़ियाँ हैं जो मिलन कराती हैं।

२—भवभूति ने प्रथम अंक की रचना में कोई विशेष नाटकीय कला नहीं प्रदर्शित की। इस अंक में अन्तिम पुनर्मिलन के कुछ कलात्मक संकेत प्राप्त होते हैं। इस अंक के प्रारम्भ में कुछ ऐसे मार्मिक तत्व हैं जिनसे प्रकट होता है कि राम सीता का परित्याग कर देंगे। सूत्रधार इस तथ्य को (प्रथम अंक, छठा श्लोक) हमें पहले ही सूचित कर देता है। अपवाद का वातावरण था। जब यह अपवाद राम के पास पहुँचता है तो वे सीता परित्याग का निश्चय कर लेते हैं। इस अपवाद और परित्याग सम्बन्धी अनेक बातें नाटककार अपवाद को राम के पास पहुँचने से पहले दर्शकों को बता देना चाहता है। वे तथ्य निम्न-लिखित है—

(१) राम को स्वयं अपवाद पर अविश्वास है (१/१२, १४) जब लक्ष्मण चित्रावली (प्रथम अंक) का विवेचन सीता और राम से करते हैं तो कवि को अग्नि परीक्षा दृश्य के विवेचन के समय सीता की पवित्रता के विषय में कहने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

२—राम सीता को अपवाद के कारण नहीं छोड़ रहे हैं किन्तु

जनता के प्रति अपने सर्वोच्च कर्त्तव्य का ध्यान रखकर ही सीता परित्याग कर रहे हैं। उनके कार्य जनता के आक्षेप से शून्य होने चाहिये। कर्त्तव्य के इस महान आदर्श को ध्यान में रखकर राम सब कुछ बलिदान करने के लिए तत्पर हो जाते हैं (१।१२, ४१, ४२, ४४) राम अपने प्रथम भाषण में ही (१।७, ८) यह स्पष्ट कह देते हैं कि वे प्रजा के लिए सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हैं। उनका यह कथन सहृदयों को दुःखाकुलित कर देता है।

३—सीता, राम के इस महान् आदर्श को जानती है और यदि आवश्यकता चाहे तो वे स्वयं ही सेवक के रूप में बनवास स्वीकार कर सकती हैं (१।१२)। सीता परित्यक्त हुयीं, यह कोई महान घटना नहीं। महान घटना तो यह है कि वे ऐसी निर्मम दशा में त्यागी गई (१।४९) कि उन्हें यह अवसर ही न प्राप्त हो सका कि अपना प्रसव कहाँ और कैसे करें।

४—राम एक नये राजा हैं (१।८)। राज्य का सारा भार उन पर है। *प्रत्येक नया नियुक्त व्यक्ति राम के उत्तरदायित्व, उलझन और सतर्कता का अनुभव कर सकता है,* जो उसके कर्त्तव्यों के कारण प्रत्यक्ष सामने आती हैं। राम एकाकी हैं (१।३)। उनके गुरुजन, जो मंत्रणा दे सकते थे, दूर हैं (१।६)।

५—चित्र दृश्य यह सिद्ध करता है कि राम और सीता परस्पर कितना स्नेह करते हैं। वे चित्र में भी वियोग नहीं सह सकते (१।२७, ३०,३३)।

६—भवभूति ने प्रथम अंक में ही सप्तम अंक के विषय में विचार किया है और गर्भ व्यापार (१।१०,३३) के साथ साथ जृम्भक का वर्णन (१।१५) जो पुत्र की पहचान में काम देता है तथा भागीरथी (१।२३) एवं पृथ्वी (१।५१) का भी संकेत दे दिया है। ये दोनों आगे सीता की रक्षा का कार्य समान रूप से करती हैं।

४—प्रथम अंक की भाषा समृद्ध और काव्यमय है। कोई भी ऐसा वाक्य या शब्द नहीं है जिसके लिए हम कह सकें कि इसे ऐसा न होना चाहिये। एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो गम्भीर भाव न व्यक्त करता हो। शब्द मानव हृदय को स्पर्श करने की क्षमता और अर्थ रखते हैं।

५—द्वितीय और तृतीय अंक में हम भवभूति को एक दूसरे रूप में ही पाते हैं। शम्बूक की कथा बाल्मीकि रामायण और पद्मपुराण में हैं। किन्तु उन दोनों ग्रंथों में यह स्थल काव्यात्मक और कलात्मक नहीं है। भवभूति के 'उत्तर' के दूसरे और तीसरे अङ्क में जो वैशिष्ट्य है वह अद्वितीय है। भवभूति के यह अंक पूर्णतया मौलिक है इसमें एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण निहित है। रामके चरित्र में कोई विशेष परिवर्तन और विकास नहीं है। केवल उनकी करुणा विषाद और पश्चात्ताप दर्शन में उमड़ने वाली। सीता एक गतिशील भावधारा में बहती हैं। वे पति की उपस्थिति और पति के विलापों से प्रभावित होती है तथा तमसा की एक चरम भावना के साथ जा पहुँचती हैं। बहुत से मनोवैज्ञानिक चढ़ाव उतार भावों में आते हैं। तृतीय अंक के सातवें श्लोक में सीता राम के प्रति गम्भीर कारुणिक भावों की अनुभूति करती है। वह राम को आर्य पुत्र कहने में अपने को असमर्थ पाती हैं और 'राजा' कहती हैं। ३।४६ में वह अभिव्यक्त करती हैं कि उनका हृदय राम के प्रति निर्मल है क्योंकि उन्होंने अभी कुछ काल पहले राम की दशा देखी है उनकी बातें और विनम्र क्षमा प्रार्थना सुनी। वस्तुतः सीता को यह आशा नहीं थी कि राम क्षमा प्रार्थी होंगे। सीता उन्हें क्षमा करती हैं। सीता को यह ज्ञान न था कि राम यह नहीं जानते कि उनकी पत्नी जीवित है और उन्हें अपने अपराध की क्षमा भी मिल जायगी। कवि की विशेषता यह है कि वह सीता को सदैव एक आदर्श प्रेमिका और पत्नी के ही रूप में उपस्थित करता है, न कि पति से अप्रसन्न नायिका के रूप में। इस सीता के उज्ज्वल चरित्र के तीन मुख्य व्यापार क्रम हैं—

१—राम को दुःखित और निष्कलुष देख सीता शीघ्रता से सहायता

के लिए आगे आती है (३।१०), किन्तु थोड़ा सा प्रतिबिम्बित होते ही पृथक हो जाती है (३।१२)। उनका यह पृथक होना भाग्य को दोष देने के साथ होता है (३।२२)। सीता को विश्वास हो जाता है कि राम ने उन्हें भुला नही दिया है। परित्याग एक महान रहस्य है।

२—द्वितीय दशा मे सीता एक पग और आगे बढ़ी हुई है। जब वासन्ती राम को स्वकीय स्त्री के प्रति निर्दय व्यवहार करने के कारण बुरा भला कहती है, तब सीता ऐसी आदर्श नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने पति के पक्ष में पति की निन्दा करने वाली वासन्ती का निवारण करती है (३।२६,२७)। अपनी चरम सीमा मे यह बात तब पहुँच जाती है जब सीता, राम के लिए अपने स्वाभिमान का उत्सर्ग कर देती है (३।४०) लेकिन तमसा का कथन (३।४२) सीता को उसकी वास्तविक दशा का ध्यान करा देता है।

३—इसके पश्चात् एक द्वितीय प्रतिक्रियात्मक अवस्था आती है (३।४३,४५), जो प्रथम अवस्था से अधिक मर्मच्छिद नही है। इसके पीछे ही एक उपप्रतिक्रिया होती है जबकि सीता को ज्ञात होता है कि उसका पति उसे पहले जैसा ही स्नेह करता है और यहाँ तक कि वह किसी अन्य स्त्री को स्नेह नही दे सकता। फलतः उसने द्वितीय विवाह भी नही किया है। यहाँ दम्पति का आन्तरिक मिलन पूर्ण हो जाता है (३।४६)। यह स्पष्ट है कि एक कवि मानव हृदय की गहराई मे जितना ही उतर सकता है और आरम्भ से ही अन्त का एक परिणाम निकाल लेता है, उतना ही महान कलाकार है क्योंकि उसमे नैसर्गिकता है। ऐसी ही मानवीय भावनायें नाटक के प्रत्येक पृष्ठ मे पाई जाती हैं।

उत्तर रामचरित के छठें अंक का परिचय दृश्य भवभूति ने एक बहुत ही प्रतिभावान और यथार्थ मनोवैज्ञानिक के रूप मे चित्रित किया है। कवि के नाटक के अन्तिम अंकों मे छठा अंक महान है। इस अंक के लिए लेखक द्वितीय अंक के विष्कम्भक से ही भूमिका निर्माण करता रहा है। वहाँ हम प्रथम बार अश्वमेध यज्ञ के विषय मे सुनते हैं।

राम इस वस्तु को ३।४६ म दृढ करते हैं। चौथे अंक के अन्त मे हम अश्व का प्रत्यक्ष देखते हैं। ६।१५ मे पिता और पुत्र में दृष्टि की समता आश्चर्यजनक है। यह अंक बहुत ही कलात्मक है और कालिदास के शाकुन्तलम् के सप्तम अंक स मिलता है। स्वीकृति की कौतूहलता बडी उत्सुकता के साथ अन्तिम अंक के अन्त तक बनाई रखी गई है।

उत्तर रामचरित के कुछ अन्य गुण

उत्तर रामचरित भवभूति की सर्वोत्कृष्ट कला का सुन्दर निदर्शन है। अपने गुणो मे यह नाटक नाट्य जगत की सुन्दरतम सृष्टियों मे मे एक है। यदि हम उत्तररामचरित के विष्कम्भकों की तुलना महावीर चरित और मालती माधव से करते हैं तो हम कवि की एक अन्य बढ़ी हुई सफलता को पाते हैं। उत्तर रामचरित म उसने विष्कम्भकों का महत्वपूर्ण नाटकीय व्यवहार किया है। महावीरचरित और मालतीमाधव म एक ही व्यक्ति घंटो भाषण करता रहता है और वह यह भी बतलाता है कि वह कौन है ? और क्या कर रहा है। उत्तर रामचरित क विष्कम्भकों मे पात्र संवादों मे सूचनायें दे देते हैं और सामाजिक इस बात का नही परख पाता है कि वे सूचना देन के लिए हैं। उत्तर रामचरित के द्वितीय और चतुर्थ विष्कम्भक अत्यन्त सुन्दर हैं, जिनम एक भी शब्द व्यर्थ का नही है और जो पूर्णत स्वाभाविक भी हैं।

भवभूति क 'उत्तर' म नाटकीय विपरीत लक्षणा के कुछ श्लाघ्य विकास देखत ही बनत है। चित्र दर्शन अंक म जब राम और सीता पूर्वानुभूत दुखो का स्मरण कर आनन्द ल रहे हैं वे चित्रो की ओर, जो भूतकाल क स्मृति चिन्ह हैं तथा जिनका उपयोग वर्तमान म आनन्द लना है थोडा बहुत देखते है। सामाजिक परवाद की बात पहले से ही सुने हुए होते हैं (१।६) और उन दोनो के भाग्याकाश पर उमडते हुए दुख क काले बादलो को देखत हैं। राम उस समय भी (१।२३) कुछ दुख भरे संकत करते हैं और अपनी सोई हुई पत्नी के पास (१।३८) न

जाने क्या-क्या वियोग विषयक बातें सोचते है। इसी समय प्रतीहारी कहती है 'मा गया' यह सब दशकों पर प्रभाव डालते हैं।

लेखक ने १२ वर्ष दीर्घ कालीन अन्तर को जो प्रथम और द्वितीय अक के बीच मे है, अत्यन्त कुशलता से मेनु द्वारा लाया है। यह विचारणीय है कि वह अनेक प्रकार स एतत् सम्बन्धी तथ्यों को हम समझाते हैं। द्वितीय अक का प्रकृति चित्रण (२।२७) और युवक मयूरो की उपस्थिति (३।१९,२०,२१), गज के शावक की पूर्ण युवावस्था (३।१६,१७) इत्यादि सकेत देत हैं कि इस द्वादश वर्ष के समय म अनेक परिवर्तन और विकास हुये हैं। व्यक्तियो म और स्थानो म भी विविध परिवर्तन हुये है। जनक राज्य छोड चुके हैं (४।९)। लवणासुर मारा जा चुका है। ऋष्य शृ ग का द्वादश वर्षीय यज्ञ भी समाप्त हो चुका है किन्तु पर्वत वैसे ही (२।२७) स्थित है, उनमें कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता है।

उत्तर के दोष

अनेक श्रेष्ठताओं के साथ-साथ उत्तर में कुछ दोष भी हैं, जिनका सकेत अनेक समालोचकों ने दिया है। उनके कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं—

१—कुछ समालोचकों का कहना है कि भवभूति की भाषा सगीत रहित और भारी है। उसमें लम्बे-लम्बे वर्णनों और लम्बे लम्बे समासो का प्रयोग खुलकर किया गया है। यह पञ्चम और षष्ठ अक में विशेषकर देखा जा सकता है।

२—भवभूति की कला वैशिष्ट्य के विषय म कुछ बातें खटकने वाली सामने आती हैं जैसे-

(अ) उत्तर की प्रस्तावना मे सूत्रधार कहता है 'एषोऽहं कार्यवशात् आयोध्यक: . . .'यह कथन दोषपूर्ण है क्योंकि अभिनय अयोध्यावासी के प्रवेश के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। उचित यह था कि प्रस्तावना की समाप्ति के बाद और सूत्रधार के रंगमंच छोड देने के बाद अभिनय

प्रारम्भ होता। धनञ्जय आदि नाट्यशास्त्रियों के अनुसार यह प्रस्तावना दोषपूर्ण है।

(ब) तत्पश्चात् '(प्रविश्य) नट —भाव प्रेषिताहि इत. स्वगृहात् महाराजेन लङ्का समर सुहृद . ' यह भी दोषपूर्ण है। क्योंकि प्रस्तावना के बाद नट का प्रवेश न होना चाहिए। पुन नट सूत्रधार को 'भाव' कहता है और सूत्रधार उसे 'मारिष' आदि कहता है। भाव, मारिष आदि शब्द केवल प्रस्तावना म ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यहाँ यह नही कह सकते कि अभी प्रस्तावना समाप्त नहीं हुई, क्योंकि आगे ही किमिति विश्रान्त चारणानि चत्वर स्थानानि, 'वैदेशिकोऽस्मि इति पृच्छामि।'

(स) सूत्रधार पूछता है 'किमिति विश्रान्त चारणानि। नट उत्तर देता है प्रेषिताहि इत मातर ' यह अनुपयुक्त है। क्योंकि वशिष्ठादिका की उपस्थिति या अनुपस्थिति सगीत आदि के प्रारम्भ और समाप्ति से सबन्ध नहीं रखती। उनका सगीत से क्या सबध ? कवि तो केवल सीता परित्याग के समय उन्हें दूर रखना चाहता है, जिसको सूचना वह दर्शकों को देता है किन्तु सूचना रगमच के अनुपयुक्त है।

(द) कला वैशिष्ट्य म यह भी दोष है कि वशिष्ठ आदि ऋष्य शृ ग आश्रम गये हैं और वहा से अष्टावक्र के द्वारा सदेश भेजते हैं कि 'वत्से कठोर गर्भेति नानीतासि' यहाँ पर चिन्तनीय है कि उसी दिन प्रात उनकी सास गई हैं और अष्टावक्र उसी दिन अयोध्या दोपहर क पश्चात पहुँच जाते हैं, तथा सीता भी दोपहर के बाद ही परित्यक्त हुई है एव दोपहर के बाद ही वे बच्चों का प्रसव करती हैं। यदि ऐसी बात है तो मातायें कुछ घटे पूर्व सन्निकट प्रसवा सीता का जान जाती और उसे छोड़कर न जाती। क्योंकि तेरह वष क बाद तो वे मिली थीं तथा सभी माताओं को सीता अत्य त प्रिय थी। प्रसवोपरांत वे यज्ञ म जाती हैं।

(य) वशिष्ठ ने राम को सदेश अष्टावक्र के द्वारा आदेश रूप मे भेजा है। वे जाते समय स्वयं अयोध्या म क्यों नहीं कह गये। वशिष्ठ की

यह भूल विचित्र है तथा वशिष्ठ का यह कहना भी 'जामातृ यज्ञेन वय उपयुक्त नहीं हैं ; क्योंकि इससे राम की अयोग्यता प्रकट होती है। यह लेखक की त्रुटि है।

(र) लंका से लौटने के बाद केवल १४ दिन उत्सव हुए और १५वें दिन वशिष्ठ आदि ऋष्य शृंग के यहाँ गये। उसी दिन अष्टावक्र आये और सीता के पुत्र भी उत्पन्न हुये। सीता, राम के पास केवल १५ दिन ही अयोध्या में रही, तब कैसे सीता को गर्भ धारण हुआ और बालक हुये। इस विषय में कवि मौन है। यह त्रुटि क्षम्य नहीं कही जा सकती।

(ल) सप्तम अंक में वाल्मीकि कहते हैं कि शत्रुघ्न लवणासुर को मार कर आरहे हैं। 'उत्खातलवणो मधुरेश्वर: प्राप्त: .. ' लवणासुर के ऊपर चढाई १२ वर्ष पहले प्रारम्भ हुई थी, जिसकी सूचना हमें प्रथम अंक मे प्राप्त होती है। प्रश्न सामने आता है कि क्या बारह वर्ष तक अनवरत युद्ध होता रहा ? और राक्षस पर विजय नहीं मिली। तब अश्वमेध का प्रारम्भ कैसे हुआ, जो सभी शत्रुओं के हरा देने पर ही हो सकता है। यह भी एक बड़ी त्रुटि है।

३—शब्द, वाक्य और पद्य को पुनरुक्त करने की प्रवृत्ति भवभूति में अधिक पाई जाती है। नाटक मे विनोद के लिए कोई स्थान नहीं। भवभूति का विनोद जो कुछ हैं वह मस्तिष्क सम्बन्धी है। भवभूति के नाट्य मे हास्य की कमी का कारण यह है कि लेखक अपने विषय को प्राय: गम्भीरता और दार्शनिकता से लेता है। वह समझता है कि उसे कुछ शिक्षा देनी है।

४—भवभूति अपनी प्रदर्शन की प्रवृत्ति को रोक नहीं पाये हैं और कहीं कहीं इसके लिए उन्होने विशेष परिश्रम किया है। अशेष नाटक में रस वस्तुत: यथार्थ है किन्तु इसकी अभिव्यक्ति मे कृत्रिमता आ गई है। राम के सम्वादों मे सदैव इसका विवेचन होता रहता है। कालिदास की भांति उनका रस व्यंग्य नहीं है।

भवभूति की शैली

भवभूति की रचना के सभी अंगों को पढ़ने के पश्चात् उनकी शैली के विषय में जानना सरल हो जाता है। संस्कृत रचनाकारों की तीन शैलियां प्राचीन पण्डितों में प्रचलित थीं। पांचाली, गौडी, और वैदर्भी। इनमें वैदर्भी शैली सबसे सरल होती है। महाकवि कालिदास इसी वैदर्भी रीति के कवि थे और इन्होंने अपने सभी ग्रन्थ इसी शैली में लिखे, किन्तु भवभूति का गौडी और वैदर्भी दोनों रीतियों पर समान अधिकार था। उनकी वैदर्भी शैली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

कोमल और सरस भावों की व्यञ्जना उनकी रचनाओं में स्थान स्थान पर मिलती हैं। जब राम दण्डकवन में वन देवता वासन्ती से मिलते हैं तो वह उन्हें कितने सुन्दर और मार्मिक शब्दों में उलहना देती है—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण॥ (३/२६)

तुम्हीं मेरा जीवन हो तुम्हीं मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरे नेत्रों की चांदनी हो और तुम शरीर में अमृत हो, आदि सौ तरह की बातें कह कर पहले तो आपने उस मुग्धा को बहलाया और बाद में जाने दीजिये कहने से क्या लाभ?

राम सीता को चित्र दिखाते हुए कहते हैं—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि।
एतानि ते वचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥ (१/३६)

तुम्हारे ये मधुर वचन ही मेरे मुरझाए हुए जीवन कुसुम को खिलाने वाले हैं, वे मुझको प्रसन्न करते हैं और मेरी इन्द्रियों को तृप्त करते हैं।

वे मेरे कानों के लिए अमृत के समान हैं और मस्तिष्क के लिए औषधि के समान।

सोती हुयी सीता को देख राम के मन में उमड़ते हुए भावों की व्यंजना देखिए—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो–
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दन रसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिर मसृणो मौक्तिक सर
किमस्या न प्रेयो यदि परम सह्यस्तु न विरहः॥ (१/३८)

यह मेरे घर की लक्ष्मी है, मेरी आखों के लिए अमृत रूपी काजल के समान है, मेरे के लिए उसका स्पर्श चन्दन के लेप के समान है। मेरे गले में पड़ी हुई उसकी बाँह ठण्डे और चिकने मोतियों की माला के समान है। इसकी कौनसी वस्तु मुझे प्रिय नही है ? बस, इसका विरह ही मैं सहन नहीं कर सकता।

इस प्रकार वैदर्भी रीति के अनेक सरल और सुन्दर उदाहरण हमको मिलते हैं। भवभूति ने बदलती हुई शैलियों का प्रयोग बड़ी शीघ्रता और कुशलता से किया है। एक ही श्लोक मे हमको गौड़ी और वैदर्भी दोनों रीतियो के उदाहरण मिल जाते हैं–एक ही श्लोक में कोमल भाव और वीर रस की व्यंजना दोनों के उदाहरण देखिये–

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी
तथैवास्मिन् दृष्टिर्मम कलहकामः पुनरयम्।
झणत्कारक्रूर क्वणित गुणगुञ्जत् गुरु धनु–
र्धृत प्रमा बाहुर्विकच विकरालव्रण मुखः।(५/२९)

उत्तररामचरित के इस श्लोक मे हमको लव के मन मे होने वाले अन्तर्द्वन्द का उदाहरण मिलता है।

जिस प्रकार पूर्ण चन्द्र के उदित होने पर कुमुदिनी खिल उठती है उसी प्रकार मेरे नेत्र भी इसको देखकर प्रसन्न हो रहे हैं, किन्तु मेरी यह भुजा युद्ध करने को व्याकुल हो रही है, जिसने भीषण आघात करने

वाले धनुष को धारण कर रखा है और जो भयङ्कर वीर रस से भर रही है।

गौडी रीति के तो भवभूति आचार्य ही हैं। इस रीति के उदाहरण उनके सब नाटकों में मिलते हैं। वही वासन्ती जो राम को उलाहना देते समय कोमलकान्त पदावली का प्रयोग करती है, दण्डकारण्य की भीषणता का वर्णन इन शब्दों में करती है—

कण्डूलद्विप गण्डपिण्ड कषणोत्कम्पेन संपातिभि-
धर्मस्रंसित बन्धनैः स्व कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाण विष्किरमुख व्याकृष्ट कीटत्वचः।
कूजत्क्लान्त कपोल कुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमा॥ (२।६)

उपर्युक्त पद्य में भवभूति ने अनुप्रास और समास का चमत्कार दिखाने में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। श्लोक को पढ़ते ही दण्डकारण्य में गोदावरी तट का दृश्य चित्रित हो उठता है। पञ्चम अंक में लव के पराक्रम का वर्णन करते हुए चन्द्रकेतु युद्धस्थल का वर्णन करता है—

आगुञ्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वरं,
ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन्।
वेल्लद्भैरवरुण्डमुण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं,
तृप्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव॥५।६

अपने धनुष की डोरी खींचकर जब लव टंकार करता है तो पर्वत कन्दराओं में गर्जने वाले हाथियों के कानों में दर्द होने लगता है। बजते हुए नगाड़ों और कट कर गिरते हुए रुण्डमुण्डों के साथ वह शब्द मिल रहा है। बिखरे छटपटाते रुण्डों से व्याप्त पृथ्वी ऐसी लगती है मानों मृत्यु के मुख से छूटकर मृत्यु के भोजन के भाग इधर उधर बिखर गए हैं।

भवभूति की गौड़ी शैली का एक उत्तम उदाहरण उत्तररामचरित

के छठे अंक में विद्याधर के द्वारा अपनी पत्नी से लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन है—

रणत्करणझंझणत्क्वणितकिङ्किणीकं धनु-
र्ध्वन्द्रगुणाटनीकृत कराल कोलाहलम्।
वितत्य किरता: शरानविरत पुन: शूरयो-
र्विचित्रमभिवर्तत भुवनभीममायोधनम्॥

यह भवभूति की शैली की ही विशेषता है कि भावानुसार छन्दों का प्रयोग करते हैं। उत्तररामचरित में उन्होंने शिखरिणी छन्द का विशद प्रयोग किया है जो करुण रस के भावों की अभिव्यञ्जना के लिए सहायक छन्द है।

यह तो भवभूति की कविता शैली के विषय में अभी तक विवेचन किया गया, भवभूति की गद्य शैली भी अत्यन्त प्रौढ़, परिमार्जित और दुरूह है। भवभूति के गद्य को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि भवभूति उस काल के है जबकि दण्डी के आदर्शानुसार 'ओज समासभूयस्त्वम्'' ओज और समास ही गद्य के प्राण तथा कठिन गद्य ही श्रेष्ठ माना जाता था। गद्य का प्रयोग करने में भवभूति ने लम्बे लम्बे समासों और वाक्यों से काम लिया है, किन्तु भावों की तीव्रता तथा कोमल भावों की अभिव्यञ्जना में उन्होंने सरल गद्य का भी प्रयोग किया है। उत्तररामचरित में राम के चित्र को देखकर सीता कहती है-'अहा दलनवनीलोत्पल श्यामलस्निग्ध मसृणमांसलेन देह सौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दर श्री रनादर खण्डितशङ्कर शरासन शिखण्डमुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखित।'

भवभूति की शैली का अध्ययन करते समय हमें उनके इस कथन को सामने रखना होगा, जो उन्होंने लेखन का आदर्श स्वीकार किया है—

यत्प्रौढत्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवम्।
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्य वैदग्ध्ययो:॥

भाषा की अच्छी जानकारी और विभिन्न शैलियों का सफल प्रयोग तथा अर्थ की गम्भीरता ही किसी की विद्वता और बुद्धिमानी के लक्षण हैं।

भवभूति का प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-नटी चिरकाल से मानव की संगिनी बनकर अपने विविध मतरंगें आकर्षक उपादानों द्वारा उसके जीवन में घुलमिलकर एक होती रही है। कभी कभी वह वन्य-मानव को जननी बनकर अपनी सुखद एवं स्निग्ध गोद में आश्रय देती रही है, तो कभी सृष्टिकर्ता की अनूप छवियों अपने में समाहित करके अपनी ओर सृष्टि को आकर्षित करती हुई विधाता की विधायिनी शक्ति का आभास देती रही है तो कभी सहृदयों की सहचरी के रूप में अपने मनोहर हावभावों से रिझाती हुई मानव को कालिदास और भवभूति जैसी विभूतियों की प्रदायिनी बनती रही है। यही कारण है कि हमारा आदि-काव्य—

> 'मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समाः
> यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।'

के रूप में प्रकृति के मृदु अञ्चल में करुणा के स्रोत के साथ प्रकट हुआ था। प्रकृति के इस अकृत्रिम सौन्दर्य पर ही रीझ कर आंग्ल कवि बायरन Byron कह उठा है—

> 'I love not the man less
> But nature more.'

महाकवि Wordsworth तो प्रकृति को आनन्दमय ही मानते हैं। पर्वतों की उत्तुङ्ग श्रृंखलायें और निर्झरों का मादक संगीत उन्हें आनन्दाप्लावित ही दिखाई देता है—

> 'There was joy in the mountains
> There was joy in the fountains.'

हिन्दी काव्य के Wordsworth कवि सुमित्रानन्दन पन्त तो ललना-सौन्दर्य को भी प्राकृतिक सुषमा पर न्योछावर कर देते हैं—

'छोड द्रुमों की मृदु छाया
तोड प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन।
भूल अभी से इस जग को।।'

मानव का सृष्टि के आदि से ही प्रकृति से तन्तु—पट जैसा सम्बन्ध रहा है। हमारा सारा साहित्य प्रकृति के रमणीय अञ्चल में विरचित हुआ है। हृदयगत मनोभावों क प्रबल हो उठने पर मानव का प्रकृति स तादात्म्य अधिकाधिक हो जाता है। मानव की दृष्टि म प्रकृति का सवेदनशील स्वरूप ही हिन्दी साहित्य को 'छायावाद' जैसी वस्तु द सका है।

मानव क सुख दुख म प्रकृति सहचरी बन कर तद्रूप हो जाती है। प्रातःकालीन मलय-समीर, पक्षियों का नीड़ों म मृदु-कलरव, कोयल की काकली और पपीहा की 'पी कहां', अलिवृन्द का गुन-गुन की मूक भाषा म मृदु-नवीन प्रसूनों की मादक सुरभि, सरिताओं का कल कल निनाद, मृगशावकों की हृदयहारी कीड़ायें कलिकाओं पर शबनम की झिलमिलाती मणि मालायें, खेतों म फैली दूर दूर तक हरीतिमा, ऊषा का आरक्त दुकूल, दिनमणि की रजत रश्मियों क मृदु-चुम्बन से हिमाच्छादित शैल-श्रेणियों की इन्द्र धनुष सी विभा अतीव प्रमोद प्रदान करता है तो चिन्ताकुल मानस म प्रकृति के मनोरंजक उपादान वृश्चिक दशन बन जाते हैं। इष्ट जन क सयोग म जो प्रकृति कलि-निकुञ्ज बन जाती हैं, वियोग की प्राणाघातिनी मनोव्यथा 'बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें' का कथन उसी प्रकृति क लिए करवा देती हैं। सुख की अवस्था मे जो मेघ सुरति-ग्लानि निवारक होते हैं तथा प्रिय-वियोग म उन मेघों को ही दूत कर्म करना पडता है।

मृगया, केलि, वनविहार, तपभूमि, कृषिकर्म आदि कार्यों मे प्रकृति से हमारा सयोग होता रहा है। मानवमात्र को अपनी स्निग्ध एव सुखद कोड प्रदायिनी-जननी वन्य-मानव से लेकर आधुनिक मानव को भी आश्रय प्रदान करती रही है। भावुक एव विज्ञ जनो की चिर सहचरी यह प्रकृति युग युगान्तर से मानव जीवन मे एक सार होती रही है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। मानव हृदय की उदार वृत्तियो का 'सत्य शिवम् सुन्दर' की भावमयी पृष्ठभूमि पर समष्टि रूप में प्रस्तुतीकरण ही साहित्य है। हमारे आदि साहित्य अर्थात् वैदिक साहित्य का सर्जन भी प्रकृति की रम्य सुषमा की परिधि मे हुआ है।

जहाँ तक काव्य का प्रश्न है, साहित्य के व्यष्टि रूप के कारण प्रारम्भ से ही प्रकृति काव्य की अन्तरात्मा म झाकती रही है वेदो का सर्जन ही वन्य प्रदेशो मे हुआ है ? भगवान वेदव्यास, वाल्मीकि आदि महर्षि तपोवनो को अलकृत करते रहे हैं। यही कारण है कि लक्षण ग्रन्थों में लक्ष्य ग्रन्थों के लिए प्रकृति-वर्णन (विशेष रूप से महाकाव्यों के लिए) का निर्देश किया गया है।

काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप नाटक या नाट्य है। रूपको के दृश्य एव श्रव्य होने से जहाँ उनकी उपयोगिता काव्य मे द्विगुणित हो जाती है, वहा नाटकीय-दृश्यों के प्रकृति के नाना मनोरम उपादान अपने विविध परिधानों से परिवेष्टित हो नाटक की चारुता मे चार चाद लगा देते हैं। भारतीय नाटकों के दृश्यो मे प्रकृति प्रारम्भ से ही सजीव रही है। नाटक ही नहीं अपितु अशेष वाङ्मय (कविता, गद्य, आख्यायिका, गीतिकाव्य) मे प्रकृति की छाया परिलक्षित हुई है। इस भांति बन-श्री हमारे साहित्य मे नीर-क्षीर की भाँति एक होती दिखाई देती है।

साख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति एक स्वतन्त्र तथा अविनाशी सत्ता है। इसके 'सत्व रजस् तमस्' तीन गुण होते हैं। यूनानी दार्शनिक प्रकृति को परमात्मा का अनुकरण बतलाते हैं। वे प्रकृति मे ईश्वरीय सत्ता का आरोप कर लेते हैं। इसी आध्यात्मिक सत्ता की अनुकृति मात्र

प्रकृति की अनुकृति काव्य है। इसीलिए वे काव्य के रस को 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' नहीं मानते। उनका कथन है कि अनुकृति की अनुकृति अकृत्रिम हो ही नहीं सकती। जो भी हो इतना सत्य है कि प्रकृति की इसी आध्यात्मिकता की आधार शिला पर ही भारतीय वृक्ष पूजा के विश्वास एवं परम्परा की प्राचीरों पर धार्मिकता का भव्य भवन खड़ा है।

कालिदास के नाटकों में हमें प्रकृति की रम्य रूप-राशि देखने को मिलती है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का सम्पूर्ण कथानक प्राकृतिक वैभव से आबद्ध है। तपोवन का रम्य एवं सजीव वर्णन किसको विमुग्ध नहीं करता। वन-लताओं एवं तरु पादपों का अभिसिञ्चन तो अतीव सुन्दर है। प्रथम दृश्य में मृगया-हेतु आगत दुष्यन्त का मृगानुसरण अति सुन्दर है। पूरे नाटक की गतिविधियाँ प्रकृति की तपोभूमि में ही घटित होती हैं। कालिदास के नाटक ही नहीं महाकाव्य भी प्रकृति सौंदर्य से ओत प्रोत है। कुमारसंभव में हिमालय का वर्णन अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी है। भास अश्वघोष आदि का साहित्य भी प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा से युक्त है।

किन्तु संस्कृत साहित्य में जिस महाकवि के ग्रन्थ विविध और सांगोपाङ्ग प्रकृति चित्रण से महनीय हैं जो इस क्षेत्र का सम्राट है वह है वाग् विभूति भवभूति। शास्त्रीय ढंग पर प्रकृति के दो रूप दृष्टिगत होते हैं—आलम्बन तथा उद्दीपन। लक्षण ग्रन्थों में प्रकृति का उद्दीपन रूप ही अपनाया गया है। यही नहीं प्रकृति कोमल और कठोर रूपों में भी विभक्ति हो गई है प्रकृति का मानवीकरण भी प्रकृति वर्णन का विशिष्ट स्वरूप रहा है।

बाह्य प्रकृति का चित्रण

महाकवि भवभूति ने अपने विख्यात नाटक 'उत्तररामचरित्र' में प्रकृति का सजीव एवं विशद वर्णन किया है। महाकवि का यद्यपि प्रमुख लक्ष्य 'एको रसः करुण एव' का प्रतिपादन करना ही था किन्तु कथावस्तु एवं घटनाक्रम के प्राकृतिक अंचल में घटित होने से तथा वर्णन प्राधान्य होने से प्रकृति गौण न होकर पर्याप्त रूप में उच्चतर हो गई है। करुणा-

पारावार की चचल लहरियो को प्राकृतिक दृश्यो का समीर सुरभित किय रहता है। भवभूति ने यदि प्राकृतिक शोभा को इतना न सजोया होता तो निश्चित ही करुणा-भावेग को सहन करना सहृदयो के लिए दुष्कर होता।

चित्र-दर्शन के प्रथमाङ्क से ही करुण और प्रकृति एकसार होती दिखाई देती है।। कालिदास की भाँति ही भवभूति की दृष्टि सर्वप्रथम तपोवन पर ही पडी है—

"एतानि तानि गिरि निर्झरिणीतटेषु
वैखानसाश्रित तरूणि तपोवनानि।"

अतीत की विरह-व्यापिनी घटना की कटु स्मृति पचवटी के सूर्पणखा प्रसङ्ग से प्रदीप्त हो उठती है और सीता वेदना पूर्ण आर्तस्वर मे क्रन्दन करउठती है

"हा! आर्यपुत्र!! एतावत्ते दर्शनम्।"

करुणा की यह प्रतनु मन्दाकिनी कुछ ही आगे प्रकृति को अन्तस्थ कर लहरें मारने लगती है। प्रकृति की स्वतत्र सत्ता भी वेदना के प्रस्तगत सूर्य की रक्तिमा से आरक्त हो उठती है। बाल्मीकि की "वैदूर्यविमलोपादका" पम्पा आँसुओ से आर्द्र-दृष्टि पथ मे आरही है—

"एतस्मिन्मद कलमल्लिकाक्षपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुर दण्डपुण्डरीकाः
बाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले
सदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागा॥"

माल्यवान पर्वत के उत्तुग शिखर पर आश्लिष्ट मेघ को दिखाकर महाकवि ने व्यजना का परिचय दिया है—

"सोऽयं शैलः ककुभसुरभिमल्यिवान्नाम यस्मिन्।
नीलः स्निग्ध श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः॥"

प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण चित्रदर्शन भी करुणा से आर्द्र हो उठता है कि राम को भी 'विरम विरमातः परम क्षमोऽस्मि' कहना पड़ता है। महाकवि का प्रधान लक्ष्य करुण रस को प्रधान के रूप में सप्त करते रहे हैं। यही कारण है कि प्रकृति भी करुणामय हो उठी है।

भवभूति ने बाह्यप्रकृति के विविध भागों का चित्रण किया है। प्रकृति के असुन्दर चित्रों का भी समावेश हो गया है। देखिये.—

> 'कण्डूल द्विपगण्डपिण्ड कषणोत्कम्पेन संपातिभि
> र्घर्मस्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैं रर्चन्ति गोदावरीम्।
> छायापस्किरमाणविष्किरमुख व्याकृष्ट कोटरत्वच
> कूजत्क्लान्त कपोत कुक्कुट कुलाः कूले कुलायद्रुमाः॥'

प्रकृति के कठोर चित्र भी यत्र तत्र मिल जाते हैं —

> "निष्कूजस्ति मिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्ड सत्त्वस्वनाः
> स्वेच्छासुप्तगभीरि भोग भुजगश्वास प्रदीप्ताग्नय
> सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
> तृष्यद्भिः प्रति सूर्यकैरजगर स्वेदद्रवः पीयते॥"

प्रकृति के शास्त्रीय स्वरूप आलम्बन और उद्दीपन भी उत्तर रामचरित मे समाविष्ट हैं। आलम्बन रूप प्रकृति का एक चित्र दृष्टव्य है:—

> 'एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा,
> स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
> आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि,
> नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि॥'

सीता-निर्वासन के कारण राम को पंचवटी देखकर आत्मग्लानि और पश्चात्ताप हो रहा जिसकी एक मात्र उद्दीपिका पंचवटी ही है-

> 'यस्यां ते दिवसास्तया सह यथा नीता यथा स्वेगृहे,

यत्संबंध कथा भिरेव सततं दीर्घा भिरास्थीयत।
एकः सम्प्रति नाशित प्रियतमस्तामेव राम कथं,
पापः पंचवटी विलोकयतु वा गच्छत्व सम्भाव्य वा॥'

पंचवटी के दृश्य में सुकुमार और-कठोर दोनों ही स्वरूप आये हैं।
कठोर रूप देखिये—

'गुञ्जत्कुञ्ज कुटीर कौशिक घटा घुत्कारवत्कीचक:
स्तम्बाडम्बर मूकमौकुलिकुल क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै,
रुद्वेल्लन्ति पुराण रोहिण तरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः॥'

प्रकृति का सुकुमार स्वरूप भी कम आकर्षक नहीं है।

एते त कुहरेषु गद्गद्नदद्गोदावरी वारयो,
मेघालम्बित मौलिनील शिखरा क्षोणी भृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्य प्रतिघात सङ्कुल चलत्कल्लोल कोलाहलै:
रुत्तालास्त इम गँभीरपयस. पुण्याः सरित्सङ्गमाः॥'

अप्रस्तुत विधान में भी प्रकृति की सत्ता का समावेश हो गया है।
देखिये —

'किसलयमिवमुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं
हृदयकुसल शोषी दारुणो दीर्घशोकः
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव घर्म. केतकी गर्भपत्रम्॥

अन्तः प्रकृति का चित्रण-महाकवि भवभूति ने मानवहृदय की विविध दशाओं एवं मनोभावों का भी अत्यंत अनुपम चित्र खींचा है। जानकी हरण से उत्पन्न क्षोभ रावण के विनष्ट हो जाने पर भी राम के हृदय में वृश्चिक-दशन सी वेदना उत्पन्न करता रहा है। अतीत की अपमान जनक घटनायें, जिनसे इष्ट जनों को कष्ट होता है मृत्युपर्यन्त हृदय में शल्य सी चुभती रहती हैं। देखिये राम के हृदय की स्थिति मानव हृदय

के धरातल पर कितनी वास्तविक हैं—

'तत्काले प्रियजन विप्रयोग जन्मा,
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवान्छया विसोढ़ः।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति॥'

राम को कष्टद अतीत सुनने मात्र से ही भगवती जानकी का वियोग प्रत्यागत सा ज्ञात होता है। दुःखद बात सुनने की इच्छामात्र भी मानव-हृदय में नहीं रह जाती—

"विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि
प्रत्यावृत्तः स पुनरिव में जानकी विप्रयोग.।"

प्रिया के अभिलाषित अङ्गस्पर्श से मानव हृदय की दशा क्या हो जाती है यह विज्ञजन अथवा भुक्तभोगी ही अनुमान कर सकते हैं। राम के चित्त की स्थिति की व्यञ्जना कितने सुन्दर ढग से की गई है देखिए—

"विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च॥"

सदेह के माध्यम से आनन्द की अनुभूति क्या मर्मज्ञ भी कवि नहीं होने देता। लोकापवाद के कारण धीरोदात्त राम प्रजारंजन के निमित्त सीता का परित्याग कर रहे हैं किन्तु उनके हृदय में भीषण द्वंद मचा है। एक ओर पति परायणा, अनिन्द्य सुन्दरी जानकी की स्नेह-भक्ति, तो दूसरी ओर राजा का धर्म ···। दोनों का निर्वाह आवश्यक है किन्तु राम राजा हैं और राजा के धर्म की विजय होती है। किन्तु हृदय अशान्ति एव आत्मग्लानि की विमर्दिका है—

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां सौहृदाद् पृथकाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे सौनिके गृहशकुन्तिकामिव"॥

यही नहीं राम का अन्तर्द्वन्द इतना भीषण हो जाता है कि राम स्वयं को धिक्कार उठते हैं।

> अपूर्व कर्मचाण्डाल मयि मुग्धे ! विमुञ्च माम्।
> श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाक विषद्रुमम्॥"

अतीत की सुखद स्मृतियाँ, दण्डकारण्य दर्शन से पुनः उद्दीप्त हो उठती हैं। सीता के परित्याग की वेदना और ग्लानि राम के हृदय को शत-शत खण्डों में विभक्त सी कर रही है।

> "हा ! हा ! देवि स्फुटति हृदयं, ध्वंसते देहबन्धः।
> शून्यं मन्ये जगदविरल ज्वालमन्तर्ज्वलामि॥"

यद्यपि भवभूति के नाटक का प्रधान उद्देश्य 'एको रस करुण एव' को ही सिद्ध करना है किन्तु पात्र कथानक और स्थानक के संयोग से प्रकृति का अधिकाधिक समावेश हुआ है। चित्रदर्शन, पञ्चवटी और दण्डकारण्य के चित्र अनुपम हैं। उनमें प्रकृति के सभी स्वरूप (सुकुमार और कठोर, आलम्बन और उद्दीपन, अन्त और बाह्य) मिलते हैं, जब कि कालिदास ने प्रकृति के सुकुमार पक्ष को अपनाया है वहाँ भवभूति ने कठोर व सुकुमार दोनों ही रूप अपनाये हैं उदाहरणार्थ मालती माधव नामक प्रकरण रूपक में रंगमञ्च पर व्याघ्र एवं श्मशान के दृश्य दिखाये हैं जो नाट्य परम्परा के भी विरुद्ध हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी प्रकृति भयङ्कर ही है। उनके सुकुमार प्रकृति चित्र अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं प्रभावोत्पादक है।

करुण रस परिपूर्ण उत्तररामचरित में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः करुण स्थलों में प्रकृति के ही कारण कोई अपने हृदय को सँभाल सकता है अन्यथा करुणा का आवेग न जाने हृदय को क्या करता?

भवभूति का प्रणय चित्रण

भवभूति की रचनाओं में प्रेम का जितना आदर्श और मर्यादापूर्ण चित्रण प्राप्त होता है उतना किसी अन्य कवि की रचनाओं में नहीं।

उन्होंने अपने नाटकों में विशुद्ध प्रेम का ही चित्रण किया है। उनका प्रेम वासनात्मक नहीं। यौवन की रोमान्चकारी अवस्थाओं के वर्णन में भी किसी प्रकार की कामलिप्सा का संकेत नहीं प्राप्त होता। सर्वत्र उदात्त, गाम्भीर्य स्थिरता दिखाई देती है। भवभूति आदर्श दाम्पत्य प्रेम के सफल चित्रकार हैं। भवभूति के पहले के कवि स्वच्छन्द प्रणय के चित्रण में विशेष दत्तचित्त रहे हैं। किन्तु भवभूति के प्रेम सम्बन्धी विचारों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने एक बहुत ही आदर्श और सरल प्रेमी हृदय पाया था। प्रेम कैसे होता है इस विषय में भवभूति का विचार है कि प्रेम किया नहीं जाता वह तो हो ही जाता है और साथ ही प्रेम सुन्दरता, आकर्षण, धन आदि बाह्य कारणों पर नहीं आधारित होता, वह तो हृदय में होता है एवं हृदय ही प्रेम के रहस्य को जानता है।

'हृदयं त्वेव जानाति प्रीति योगं परस्परम्"।
'व्यतिषजति पदार्थानान्तर कोऽपिहेतु.॥
न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंग स्योदये पुण्डरीकम्॥
द्रवति च हिमरश्मा वुद्गते चन्द्रकान्तः॥

प्रेम हो और वह किसी कारण पर आश्रित हो, यह दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। प्रेम तो अकारण स्वतः प्रेरित और अनिवार्य होता है

वास्तविक प्रेम भवभूति के अनुसार निस्वार्थ होता है। इस उदात्त प्रेम भाव की व्याख्या करते हुए भवभूति कहते हैं प्रेम में कोई किसी से कुछ मांगता नहीं। किसी के लिए कुछ भी न करने पर प्रेम पात्र प्रेमी के लिए एक अमूल्य निधि होता है। प्रिय के सान्निध्य मात्र से ही प्रेमी का सारा दुख दूर हो जाता है।

अकिंचदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥ (६१५)

उत्तररामचरित के प्रथम अंक में ही कवि ने आदर्श दाम्पत्य

प्रणय सरसता चित्रित की है। दाम्पत्य प्रणय को कवि ने उज्ज्वल भव्य और बड़े पुण्यों से प्राप्त सौभाग्य माना है। वह सौभाग्य जिसमें प्रेम सुख दुख में सदा एक रस बना रहता है, जो सब स्थितियों में उसी प्रवाह में अनुगत रहता है, और हृदय को अपूर्व शान्ति देने वाला है। सच्चा प्रेम अवस्था परिणति के साथ भी परिवर्तित नहीं होता, वह वृद्धावस्था में भी समाप्त नहीं हो पाता। यह प्रेम समय के व्यतीत होने से सकोच के हट जाने से और अधिक प्रौढ़ रूप को प्राप्त कर लेता है।

अद्वैतं सुखदु खयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्न हार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थित
भद्र प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत्प्राप्यते॥ (१।४०)

भवभूति के अनुसार प्रेम की ज्योति सुख के समीर में तथा दुख के झंझावात में समान रूप से जला करती है। भवभूति ने जिस दाम्पत्य प्रणय का चित्रण किया है वह दुग्ध के समान धवल और गंगाजल के समान पवित्र है। Gopal Chaudhary 26 9 54

स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
धवल बहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः।

भवभूति के अनुसार दाम्पत्य प्रणय की परिणति सन्तान प्राप्ति में है। पति पत्नी का प्रेम तभी पूर्ण सफल होता है जब दोनों के सम्बन्ध को दृढ बनाने के लिए आनन्दमयी ग्रन्थि सन्तान हो।

अन्त करण तत्त्वस्य दम्पत्यो स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्य इति बध्यते॥ (३।१७)

'उत्तर' में विदूषकों के अवतरित न होने का एक मुख्य कारण भवभूति का अपना प्रेम सम्बन्धी उच्च आदर्श भी है। उनका प्रेम किसी विलासी सम्राट की प्रेम क्रीडा नहीं है जिसमें विदूषक की

सहायता आपेक्षित हो। भवभूति की प्रणय कल्पना, प्रणय साधना अत्यन्त उदात्त एवं पावन है। जिसकी समता विश्व के और भारत के साहित्य मे प्राप्त होना दुर्लभ है।

"करुण रस"

"जयन्तु ते सुकृतिनः रस सिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरा मरणजम् भयम् ॥"

महाकवि भवभूति बाल्मीकि की भांति एक ओर क्रौञ्ची के विरह मान से द्रवीभूत हैं तो दूसरी ओर व्याध को शापाभिभूत करने के लिए उनकी वाणी में ओज भी भरा है। यही कारण है कि उनके द्वारा करुण और वीर दोनो रसों का चित्रण अपनी चरम सीमा मे उत्तर रामचरित मे पाया जाता है। भवभूति की प्रसिद्धि इसलिए है कि "कारुण्य भवभूतिरेव तनुते" अर्थात् भवभूति सबसे अधिक करुण रस के उन्मेष मे सिद्ध हस्त हैं। भवभूति के करुण रस वर्णन में अलौकिकता हैं, चमत्कार है। भवभूति के करुण रस की प्रशंसा करते हुए गोवर्धनाचार्य ने अपनी 'आर्या सप्त शती' मे कहा है।

"भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्राव। ।।"

भवभूति करुण रस के प्रधान आचार्य है। रस शास्त्रियों में प्रधान रस के विषय में भोजराज शृंङ्गार को रसराज स्वीकार करते है तो अभिनवगुप्त शान्तरस को मुख्य मानते हैं किन्तु भवभूति ने करुण रस को ही सब रसों में प्रधान रस स्वीकार किया है। उन्होंने करुण रस के सबल समर्थन मे सभी रसों को करुण रस की ही विशेष स्थिति या भिन्न-भिन्न परिणाम स्वीकार किया हैं।

"एको रसः करुण एवं निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रते विवर्तान्
आवर्त्त बुदबुद तरंगमयान् विकारान्।
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम् ॥" (३।४७)

'करुण इस ही एक मात्र मुख्य रस है जिस प्रकार एक ही जल कभी भँवर के रूप को, कभी बुदबुद के रूप को कभी तरगो के रूप को धारण कर लेता है किन्तु वास्तव मे है सब जल ही उसी प्रकार निमित्त भेद से अर्थात रस सामग्री के वैलक्षण्य मात्र से एक ही करुण रस और रसो के रूप को धारण कर लेता है।' इस प्रकार करुण ही सब रसो की प्रकृति है। अन्य रस तो उसकी विकृति है। जब करुण रस के विषय मे भवभूति ऐसा उच्च दृष्टि कोण रखते थे, तब क्यों न उनके करुण रस वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट हो।

उपर्युक्त श्लोक अशेष उत्तररामचरित नाटक का बीज मन्त्र सा है। उत्तररामचरित के अशेष अक किसी न किसी रूप मे करुण रस स आत प्रोत हैं। नाटक के प्रारम्भ मे ही हम देखते हैं कि दुर्मुख के विदा होते ही राम क दुख का बाध टूट जाता है।

"शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियैः सौहृदाद पृथगा श्रयामिमाम्।
दृक्षाना परिददामि मृत्यवे, सौनिको गृहशंकुतिकामिव।।" १।४५

प्रथम अक के चित्र दर्शन वाले दृश्य मे हम दम्पति के अत्यन्त अनुराग का दर्शन करते हैं जो भविष्य मे विरह व्यथा को और भी असह्य बना देता है। जब पति पत्नी एक लम्बे दुख काल के बाद प्रणय के निर्भय भाव मे तल्लीन होकर आनन्द अनुभाव के अवसर को प्राप्त करते हैं तभी आनन्द मधु का प्याला जो ओठों तक आया था, निठुर नियति से छीन लिया जाता है। दूसरे अक मे राम जब एकाकी चिर परिचित दण्डकारण्य और पचवटी में प्रवेश करते हैं तो इन्ही वनो मे सीता के साथ अनुभूत अपने अतीत सुखों को स्मरण कर उनकी व्यथा उमड पड़ती है।

"चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरस:
कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकल·।
व्रणो रूढग्रन्थि· स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुन·
घनीभूत: शोको विकलयति मां मूर्छयति च।।" २।२६

तृतीय अक तो करुण रस का मानो अगाध सागर ही है। करुण रस की जैसी तीव्र, गम्भीर एव मर्मस्पर्शी व्यञ्जना इसमे हुई है वैसी शायद ही कहीं और हुई हो।

भवभूति का करुण रस अत्यन्त गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी है। उनके अनुसार वह उस पुट पाक के समान है जो ऊपर से तो पङ्क लिप्त होने से नितान्त शान्त, परन्तु भीतर तीव्र अन्तर्वेदना से तप्त होता रहता है।

' अनिर्भिन्नो गभीर त्यादन्तर्गूढ़घन व्यथ ।
पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणो रस ।।" (३।१)

भवभूति के अनुसार शोकातिरेक की दशा मे एकान्त में जी भर कर रो लेने से हृदय हल्का हो जाता है।

पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाह प्रतिक्रिया।' (३।२६)

राम की कितनी करुणामयी सूक्तियाँ अत्यन्त हृदय स्पर्शी है। यहाँ 'कुकूल' का सकेत कवि के गाढ़ अनुभव की ओर है। कुकूल की आँच बहुत तेज होती है परन्तु वह एक साथ न जल कर धीरे धीरे जलती है जिससे हृदय में असीम दु सह वेदना की तीव्र अभिव्यञ्जना बलात् होती है।

' चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निर्माय पुरत
प्रवासेऽप्याश्वास न खलु न करोति प्रियजन ।
जगज्जीर्णारण्य भवति च विकलत्र्व्युपरमे
कुकूलाना राशौ तदनु हृदय पच्यत इव ।।" (६।३८)

राम तो अपने दुख को शब्दों के द्वारा प्रकट करते हैं किन्तु सीतातो मूर्तिमान करुण रस ही है तमसा, सीता का वर्णन करते हुये कहती है— श्लोक है परिपाण्डु दुर्बल कपोल सु दरम दधती विलोल कबरीकमाननम् । करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरह व्यथव वनमति जानकी ।।

जानकी के साथ साथ इस अक में भवभूति की वाणी भी वास्तव में 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी' ही हो उठी हैं। राम, सीता के लिए विलाप कर रहे हैं, ? मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका यह विलाप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है।

हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्ध
शून्यं मन्ये जगदविरल ज्वालमतर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथमन्दभाग्य करोमि ॥

प्राय कारुणिक पृष्ठभूमि पर ही वास्तविक प्रभविष्णु काव्य की सर्जना होती है। आंग्ल भाषा के प्रसिद्ध कवि शैली ने लिखा है। अवर स्वीटेस्ट साग्स आर दोज व्हिच टेल अवर सैडस्ट थाटस।' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पंत का भी कहना है।

'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड कर आँखो से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान॥

भवभूति ने 'उत्तररामचरित' म जो करुण रस की म दाकिनी प्रवाहित की है वह वास्तव मे संस्कृत साहित्य की एक अभूतपूर्व एव अमूल्य निधि है। इस म दाकिनी की अविरल धारा म सीता का परित्याग-जन्य मालिन्य सदा के लिए धुल जाता है और दो हृदयो का सच्चा अनुसन्धान हो जाता है। भवभूति के करुण रस का ही यह प्रभाव है कि जड भी चेतन और चेतन भी जड हो जाते हैं।

अडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा।
ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्या हसत स्तेरस्मनावपि॥

भवभूति की काव्य-प्रतिज्ञा

भवभूति मूलत कवि हैं। भवभूति की कविता बडी चमत्कारिणी है। संस्कृत भाषा के ऊपर आपका अगाध अधिकार है। वाग्देवी ब्रह्मा की तरह आपकी वश्या थी। भवभूति की कविता म संस्कृत भाषा भावानुसारिणी है। दोनो का अनुपम सामञ्जस्य है। भाव पक्ष की दृष्टि से भवभूति कोमल तथा गम्भीर दोनो प्रकार के भावो के सफल कलाकार हैं। संयोग वियोग करुण, और आदि सभी रसों का चित्रण उन्होने कुशलता से किया है। भवभूति की अतिशय भावुकता भाव को

इतना प्रकट कर देती है कि उनका चित्रण कालिदास की तरह व्यग्य नहीं रह पाता है। यही कारण है कि कालिदास के बाद भवभूति भाव पक्ष की दृष्टि से आते हैं।

शब्द विन्यास के साथ साथ चित्र उपस्थित कर देना कवि की विशेषता है। गद् गद् नाद के साथ बहने वाली नदियों का घोर रोरमय शब्द चित्र स्पष्ट सामने खिंच आता है।

एते ते कुहरेषु गद् गद नदद् गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलीशिखरा: क्षोणीभृतो दक्षिणा:।
अन्योन्य प्रतिघात संकुल चलत्कल्लोल कोलाहलै
रुत्तालास्त इमे गभीरपयस: पुण्या: सरित्संगमा:॥ (२।३०)

दाम्पत्य प्रणय के संयोग तथा वियोग दोनों अवस्था वाले चित्रण उत्तररामचरित मे अनुपम हैं तथा तत्सम्बन्धी सूक्तियाँ संस्कृत साहित्य की अमूल्य सपदा हैं। उत्तररामचरित के प्रथम अंक में संयोग शृङ्गार का सरस वातावरण है, जहाँ राम सीता को अतीत काल मे अनुभूत *प्रणय व्यापारों की याद दिलाते हैं।*

किमपि किमपि मन्द मन्दमासक्तियोगाद,
विरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतै कैकदोष्णो,
रविदित गतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्॥

सीता को बनवास देने के उपरान्त प्रियतमा सीता के वियोग मे राम की दशा अत्यधिक शोचनीय हो जाती है। उनका हृदय विदीर्ण होना चाहता है पर उसके खण्ड नहीं हो पाते। व्याकुल शरीर मूर्छित हो रहा है, पर *चैतन्यशून्य नहीं होता। प्रिय वियोगाग्नि* शरीर को जलाती है पर भस्म नहीं करती। क्रूर विधाता मर्म पर प्रहार करता है किन्तु जीवन का अन्त नही हो जाता।

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा न तु भिद्यते
वहति विकल कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।

ज्वलयति तनूमन्तर्दाह: करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥ ३।३१

शृङ्गार तथा करुण मे भवभूति को सरस्वती की तदनुकूल कोमल कान्त पदावली की सज्जा मे दिखाई देती है तो बीर और रौद्र इस में गौडी की विकट बन्धता दिखाई पड़ी हैं। उत्तररामचरित की चन्द्रकेतु और लव की उक्तियों तथा उनके युद्ध वर्णन मे वीर रसोचित पदावली का प्रयोग पाया जाता है।

ज्याजिह्वया वलयितोत्कट कोटिदंष्ट्र
मुद्गारि घोरघन घर्घर घोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्त हसदंतकवक्त्रयन्त्र
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥ (४।२६)

भावों के स्निग्ध चित्रण के कारण कुछ लोग उत्तररामचरित को 'गीति नाट्क' और प्रकृति तथा युद्ध के वर्णनों के विन्यास के कारण कुछ लोग इसे 'एपिक ड्रामा, भी कहते है। यथार्थ मे तो उत्तर-राम चरित भवभूति की नाट्य प्रतिभा को प्रकट करने वाला सर्वोच्च नाट्क है। भवभूति स्वभाव से ही गंभीर प्रकृति के कवि हैं, जिन्हें अपनी वेदना अधिक दृष्टि गोचर होती है। फलत: वे भाव प्रवण कवि हैं। इस भावुकता का प्रभाव उत्तर रामचरित मे अत्यधिक पड़ा है।

—भवभूति और कालिदास—

नाट्य साहित्य के क्षेत्र में, भवभूति की समीक्षा करते समय कालिदास के साथ यदि किसी कवि का नाम लिया जाता है, तो वह है महाकवि। भवभूति यद्यपि प्राचीन काल मे भी और वर्तमान काल मे भी कालिदास को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है, फिर भी कुछ समालोचकों की दृष्टि में उत्तर रामचरित मे भवभूतिविशिष्यते।' कालिदास और भवभूति दोनों में कौन श्रेष्ठ है, इस विषय मे प्राचीन काल में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था, जिसकी विज्ञप्ति इस पद्य से होती है।

कस्य कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकवि ।
तरव पारिजाताद्या स्नुहीवृक्षो महातरु ॥

कालिदास और भवभूति की तुलना करते समय हम साहित्य के कुछ प्रमुख अगों को यहां पर प्रस्तुत करेंगे।

१ रस सिद्धि'—महाकवि भवभूति की काव्य कला का वैशिष्ट्य है उनकी करुण रस की अभिव्यञ्जना। जिसके लिए भवभूति और उत्तररामचरित विश्वनीय विख्यात हैं।

'करुणे तू क्यों रोती है ? उत्तर में वह और अधिक रोई।
मेरी विभूति को भवभूति क्यों कहे कोई॥"

कालिदास ने भी रति विलाप और अज विलाप म करुण रस को प्रस्तुत किया है किन्तु भवभूति की अलौलिकता और चमत्कार को वह नही पा सके हैं। भवभूति का वीर रस का वणन भी अत्यन्त सजीव है वीरों का गर्वीला गजन और शस्त्रों की झनकार, युद्ध का प्रत्यक्ष दृश्य उपस्थित कर देते हैं-

किन्तु, कालिदास शृङ्गार रस के सयोग और वियोग दोनों क्षेत्रों मे भवभूति को बहुत पीछे छोड देते है। दोनों कवियों की रस परिपाक की दृष्टि स तुलना करते हुए एक समालोचक का कहना है—

' इफ कालिदास हैज मोर फैंसी एण्ड इमिजिनेशन भवभूति इज मोर सेंटिमेण्टल एण्ड पैंसनेट। कालिदास स्पेशली एक्सेल्स इन 'शृंगार भवभूति इन करुण 'एण्ड वीर' बट बौथ डिपिक्ट दि अदर सेंटीमेन्टस प्रक्टिकली विद दि सेम फसिलिटी एण्ड फेलिसीटी।"

२ शैली—कालिदास की कविता मे व्यञ्जना की प्रधानता है तो भवभूति की वाणी मे वाच्यार्थ की प्रगल्भता। कालिदास थोड से चुने शब्दों मे अधिक से अधिक अथ की अभिव्यक्ति कर देते हैं तो भवभूति विपुल वाग्विस्तार द्वारा किसी भाव का विशद वणन करते हैं। भवभूति सब कुछ स्वय कह देते है जबकि कालिदास बहुत कुछ अपने पाठक की कल्पना के लिए छोड देते हैं। कालिदास की रचना प्रणाली

सरल और आडम्बर शून्य है किन्तु भवभूति की वचनमयी प्रौढ़ और दीर्घ समास संकुल है। कालिदास की भाषा मसृण और कोमल है, भवभूति की प्रगल्भ और उदात्त। कालिदास मूर्त की उपमा मूर्त से देते हैं तो भवभूति प्रायः मूर्त की उपमा अमूर्त से देते हैं। जैसे—शकुन्तला की उपमा सिवार से लिपटे कमल पुष्प से दी गई है तो सीता की भवभूति के द्वारा मूर्तिमती करुणा या विरहव्यथा से।

कालीदास ने प्रकृति के केवल ललित और सुकुमार पक्षों का ही वर्णन किया है किन्तु भवभूति ने प्रकृति के विकट, उग्र और भयानक पक्षों का भी वर्णन सुन्दर ललित और सुकुमार पक्षों के ही समान किया है। डा० भण्डारकर दोनों कवियों की शैलीगत तुलना करते हुए कहते हैं।

"कालिदास, ऐज प्रो० विलसन रिमार्क्स हैज मोर फैन्सी। ही इज ए ग्रेटर आर्टिस्ट दैन भवभूति। दि फार्मर सजेस्ट्स आर इन्डिकेट्स, व्हार दि लेटर एक्सप्रेसेज इन फोर्सिफुल लैंग्वेज। दि करेक्टर्स आफ दि लेटर, ओवर कम बाई फोर्स आफ पैसन आफेन वीप बिटरली, व्हाइल दोज आफ फार्मर सिम्पली शेड ए फ्यू टियर्स इफ दे डू सो आल।"

३ 'प्रणय'—प्रेम के मान्य आदर्शों में भी दोनों में महान अन्तर है। भवभूति ने जैसा उज्जल दाम्पत्य प्रणय का चित्र खींचा है वैसा संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है। कालिदास आदि कवियों ने सांसारिक वासना से भरे काम का अधिकतर वर्णन किया है। भवभूति की दृष्टि में सच्चा और स्वर्गीय प्रेम वह है जो सदा एक सा सुखद, शाश्वत और बिना किसी वाह्य कारणों के अलौकिक और आत्मिक होना है।

"अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यत्।" १।३६

"व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु—
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।" ६।१२

इन्हीं उपर्युक्त विशिष्टताओं के फलस्वरूप प्राचीन आलोचक मानते थे—'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।'

४. प्रभाव—भवभूति और कालिदास की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि भवभूति पर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भवभूति ने अनेक भावों की प्रेरणा कालिदास से प्राप्त की है। उत्तर का प्रथम अंक में स्थित चित्रदर्शन दृश्य रघुवंश के १४।२५ से प्रभावित है। उत्तर का छठा अंक शाकुन्तल के सातवें अंक से कुछ दूर तक प्रभावित है। मालतीमाधव का नवां अंक विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक से पर्याप्त मिलता है। मालतीमाधव मेघदूत का कालिदास के मेघदूत से प्रत्यक्ष रूपेण साम्य रखता है।

भारतीय नाट्य साहित्य [illegible] के इन दो चरमोज्जवल नक्षत्रों के विषय में तुलनात्मक [illegible] देते हुए द्विजेन्द्रलाल राय ने कहा था—

"विश्वास और मर्यादा में, प्रेम की पवित्रता में भाव की तरंग क्रीडा में, भाषा के सौन्दर्य में और हृदय के माहात्म्य में उत्तररामचरित श्रेष्ठ है, तथा घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना की कोमलता में, मानवचरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता और ललितता में अभिज्ञान शाकुन्तल श्रेष्ठ है।"

संस्कृत साहित्य में यह दोनों नाटक अद्वितीय हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल शरदऋतु की पूर्ण चाँदनी है, तो उत्तर रामचरित नक्षत्र खचित नील आकाश है। एक व्यञ्जन है तो दूसरा हवि। एक वसन्त है तो दूसरा पावस। एक नृत्य है तो दूसरा मधु। एक उपभोग है तो दूसरा पूजन।

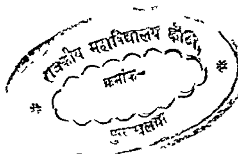
उत्तर में प्रयुक्त छन्द और अलंकार

उत्तर के सात अंकों में २५६ पद्य हैं, जिसमें १९ छन्द व्यवहृत हैं। *अनुष्टुप ९१ बार, शिखरिणी ३१ बार, वसन्ततिलका २६ बार,* शार्दूलविक्रीडित २५ बार, मालभारिणी १, आर्या १ बार, वंशस्थ १ बार, मालिनी १७ बार, रथोद्धता ३ बार, शालिनी ५ बार, इन्द्रवज्रा और उपजाति ६ बार पुष्पिताग्रा ५ बार, द्रुतविलम्बित २ बार, पृथ्वी ३ बार, मंजुभाषिणी और हरिणी ८ बार, प्रहर्षिणी ७ बार, मन्दाक्रान्ता १३ बार-

कविने प्रयुक्त किया है।

उत्तर के पद्यों में मुख्यतः भवभूति ने ३६ अलंकारों का प्रयोग किया है। उपमा ४७ बार, उत्प्रेक्षा २८ बार, काव्यलिंग १७ बार, अर्थान्तरन्यास १३ बार, संकर १२ बार, रूपक ११ बार, तुल्योगिता १० बार, समृष्टि ८ बार, निदर्शना ७ बार, विषम ६ बार, स्वभावोक्ति-अतिशयोक्ति-अर्थापत्ति प्रत्येक पाच-पाच बार, सन्देह और दृष्टान्त प्रत्येक चार-चार बार, परिसंख्या ३ बार, पर्याय-दीपक-विरोधाभास-विशेषोक्ति आक्षेप प्रत्येक दो दो बार, अनुमान-परिणाम-स्मरण यमक विभावना-अनुप्रास-समाहित-अप्रस्तुतप्रशंसा-श्लेष अपह्नुति- तद्गुण-भाविक-उल्लेख-व्यतिरेक अलंकारों का एक प्रयोग एक बार हुआ है।

उपर्युक्त १९ छन्दों और ३६ अलंकारों का सफल प्रयोग कवि के प्रौढत्व और अधिकार की सूचना देता है।



उत्तर माधुरी

(उत्तर रामचरित के कतिपय सुन्दरतम श्लोकों का संकलन)

प्रथम अंक—

१—सूत्रधार.—य ब्राह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते ॥२॥

अन्वय—इय वाक् देवी वश्या इव य ब्राह्मणम् अनुवर्तते। तत्प्रणीयम् उत्तर राचरित प्रयोक्ष्यते।

अनुवाद—यह सरस्वती देवी वशवर्तिनी चेरी की तरह जिस ब्राह्मण भवभूति का अनुगमन करती है, उसके बनाये हुये उत्तर रामचरित का हम अभिनय करेंगे।

२—सूत्रधार.—सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥५॥

अन्वय—सर्वथा व्यवहर्तव्यम्, अवचनीयता कुतः, हि जनो यथा स्त्रीणा तथा वाचा साधुत्वे दुर्जन।

अनुवाद—सब प्रकार से व्यवहार करना चाहिए, पर निर्दोषता कैसे होसकती है, क्योंकि लोक जैसे स्त्री के पातिव्रत्य मे उसी तरह वचन की निर्दोषता में भी दुर्जन दोषदर्शी होता है।

३—राम—कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीय
स्तन्नो यदुक्तमशिवं नहि तत् क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरव ताडनानि ॥ ४ ॥

अन्वय—कुल धनैः जनः अनुरञ्जनीय इति कष्टम्, तत् नः यत्

अशिवम् उक्तम् तत् ते नहि क्षमम् । सुरभिण: कुसुमस्य
मूर्ध्नि स्थितिः नैसर्गिकी सिद्धा, चरणैः अवताडनानि न ।

अनुवाद—दुख है, कुल का यश ही धन है जिसका ऐसे व्यक्तियों द्वारा लोक को प्रसन्न करना ही पड़ता है । इस लिए हम लोगों को जो अभद्र बात कही गयी है, वह तुम्हारे सबन्ध में उचित नहीं है । क्योंकि सुगन्धित पुष्प का शिर पर रहना स्वभावसिद्ध है परन्तु उसका पैरों तले कुचला जाना स्वभावसिद्ध नहीं है ।

४-राम—प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहर कुन्तलैः
दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम् ।
ललितललितैर्ज्योत्स्ना प्रायैरकृत्रिम विभ्रमैः
रकृत मधुरैरम्बाना मे कुतूहलमङ्गकैः ॥ २० ॥

अन्वय-प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहर कुन्तलैः दशनकुसुमैः मुग्धालोकमुख दधती शिशु ललितललितैः ज्योत्स्नाप्रायैः अकृत्रिमविभ्रमैः मधुरैः अङ्गकैः मे अम्बाना कुतूहलम् अकृत ।

अनुवाद—अति सूक्ष्म तथा विरल एक दूसरे से न सटे हुये और मुख के प्रांत भागों कपोलों पर लहराते हुए केशों से, तथा कलियों के समान दाँतों से, सुन्दर दिखाई पड़ने वाले मुख को धारण करती हुई, शैशव अवस्था में वर्तमान, यह जानकी भी अत्यन्त सुन्दर, चांदनी के सदृश, स्वाभाविक विलासों से युक्त तथा प्यारे लगने वाले छोटे छोटे अङ्गों से मेरी माताओं में दर्शनोत्सुक्य को उत्पन्न करती थी।

५-अलसललित मुग्धान्यध्व सञ्जात खेदा
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्त संवाहनानि ।
परिमृदितमृणाली दुर्बलान्यङ्ग कानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥२४॥

अन्वय—यत्र त्वम् अध्वसञ्जातखेदात् अलसवलितमुग्धानि अशिथिलपरिरम्भैं दत्त सवाहनानि परिमृदित मृणाली-दुर्बलानि अङ्गकानि मम उरसि कृत्वा निद्राम् अवाप्त ।

अनुवाद—जिस स्थान पर, मार्ग से उत्पन्न थकावट के कारण जड़ीभूत, शिथिल और मनोहर, गाढ़ आलिङ्गनों से दबाये हुये तथा मसले हुये पतले कमलनाल के समान दुर्बल कोमल अंगों को मेरे वक्ष स्थल पर रखकर तुम निद्रा को प्राप्त हुई, वह प्रदेश किस प्रकार भुलाया जा सकता है ।

६—राम—किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्ति योगा-
दविरलित कपोल जल्प तोर क्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो,
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥२७॥

अन्वय—आसक्तियोगात अविरलितकपोल किमपि किमपि मन्द मन्दम् अक्रमेण जल्पतो अशिथिलपरिरम्भ व्यापृतैकं कदोष्णो अविदितगतयामा रात्रि. एव व्यरसीत् ।

अनुवाद—प्रेमासक्ति के कारण कपोल सटा कर धीरे धीरे बिना क्रम के जो कुछ कहते हुये तथा एक एक बाँह को गाढ़ आलिंगन में निरत करते हुये हम दोनों के बिना प्रहरों का पता पाये रात ही बीत गई थी ।

७—लक्ष्मण—अथेदं रक्षोभिः कनकहरिच्छद्मविधिना,
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि ।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्य चरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥२८॥

अन्वय—अथ पापै. रक्षोभि. कनकहरिणच्छद्मविधिना इदं तथा वृत्तं यथा क्षालितमपि व्यथयति । शून्ये जनस्थाने विकलकरणैः आर्यचरितैं ग्रावा अपि रोदिति वज्रस्य अपि हृदय दलति ।

अनुवाद—शूपणखा की घटना के अनन्तर पापी राक्षसो ने सुवर्ण-मृग की कपटविधि स ऐसा किया, जो कि बदला लेने पर भी अभी तक दुख देता है। निर्जन जनस्थान मे नेत्र आदि इन्द्रियों की क्रिया म असमथ आर्य के चरित्रों से पत्थर भी आंसू गिराता है और वज्र का हृदय भी विदीर्ण होता है।

८—राम—म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोह कानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि।
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥३६॥

अन्वय—सरोरुहाक्षि! ते एतानि सुवचनानि म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।

अनुवाद—हे पद्मलोचने! तुम्हारे ये कोमल वचन मुरझाये हुये जीवनपुष्प को विकसित करने वाले, उत्तम प्रकार से तृप्त करने वाले, सम्पूर्ण इन्द्रियो के मोहजनक कर्णो म अमृतस्वरूप और रसायन की तरह मन की शक्ति को बढाने वाले है।

६—राम—इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस।
अयं बाहु कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसर
किमस्या न प्रेयो यदि परम सह्यस्तु विरह ॥३८॥

अन्वय—इयं गेहे लक्ष्मी, इयं नयनयो. अमृत वर्ति., असौ अस्या स्पर्श वपुषि बहुलश्चन्दनरस, अयं कण्ठे (न्यस्त)बाहु शिशिरम सृण मौक्तिकसर, अस्या किम् न प्रेय? तु विरह यदिपरम् असह्य।

अनुवाद–यह सीता घर मे लक्ष्मी है यह नेत्रो मे अमृत की वर्तिका है, इसका यह स्पर्श शरीर मे गाढा चन्दन का रस है, यह भुजा कण्ठ मे शीतल तथा चिकना मुक्ताहार है । इसका क्या नही अतिशय प्रिय है, यदि अत्यन्त असहनीय है तो केवल इसका विरह ही।

१०—राम —अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितम्
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥३६॥

अन्वय–यत् सुखदुःखयोः अद्वैत, सर्वासु अवस्थासु अनुगत, यत्र हृदयस्य विश्राम ,यस्मिन् रस अहार्य यत् कालेन आवरणात्ययात् परिणते प्रेमसारे स्थित, तस्य सुमानुषस्य तत् एकं भद्र कथमपि हि प्राप्यते ।

अनुवाद–शुद्ध प्रेम जीवन की प्रत्येक परिस्थिति मे एक रस रहता है । हृदय को उसमे एक अनिर्वचनीय सुख और शान्ति की अनुभूति होती है । अवस्था का उस पर कोई प्रभाव नही पडता । वार्धक्य के कारण उसकी सरसता मे कोई कमी नही आती । कुछ दिनो के बाद जब सकोच या दुराव का भाव दूर हो जाता है, तब वह और भी अधिक परिपक्व एव प्रगाढ हो जाता है । ऐसे कल्याणकारी पवित्र दाम्पत्य प्रेम की प्राप्ति बडे भाग्य से ही किसी को होती है ।

द्वितीय अंक–

११–तापसी–प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियम.
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीत परिचय ।

पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥२॥

अन्वय—साधनां वृत्ति प्रियप्राया, वाचिनियम विनयमधुरः मतिः प्रकृत्या कल्याणी, परिचय. अनवगीतः, तत्इद पुरो वा पश्चाद्वा अविपर्यासितरसम् अनुपधि विशुद्ध रहस्यं विजयते।

अनुवाद—सज्जनो का व्यवहार अतिशय आह्लादकारक होता है, उनकी वाणी का सयम विनय के साथ मधुर होता है, बुद्धि स्वभाव से ही मगलकारिणी होती है, परिचय निर्दोष होता है, मिलन पहिले या पीछे मन् राग का उल्लंघन न करने वाला, निश्छल एवं पवित्र होता है और इस प्रकार उनका चरित्र सर्वोत्कृष्ट होता है।

१७–आत्रेयी–वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैवतथा जडे
न तु खलुतयोर्ज्ञानेशक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान्भेद फलंप्रति, तद्यथा ॥
प्रभवति शुचिर्विम्बग्राहे मणिर्नमृदादयः ॥४॥

अन्वय–गुरु यथा प्राज्ञे तथैव जडे विद्या वितरति, तुतयो. ज्ञाने शक्तिम् न करोति, वा न अपहन्ति, खलु। फल प्रति पुन भूयान् भेदो भवतिहि, तद् यथा शुचि. मणि विम्ब-ग्राहे प्रभवति मृदादय न।

अनुवाद–गुरु जिस प्रकार बुद्धिमान् छात्र को, उसी प्रकार मन्द बुद्धि छात्र को भी विद्या देता है। उन दोनो के बोध मे न सामर्थ्य देता है और न उसका नाश ही करता है। ऐसा होने पर भी फल में बहुत भेद होता है, जैसे कि हीरा आदि निर्मल मणि प्रतिबिम्ब के ग्रहण करने मे समर्थ होते हैं, परन्तु मिट्टी आदि पदार्थ प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते।

१३–वासन्ती–वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोहि विज्ञातु मर्हति ॥७॥

अन्वय–वज्रादपि कठोराणि कुसुमादपि मृदूनि लोकोत्तराणाम् चेतांसि विज्ञातुम् कः अर्हति।

अनुवाद–अलौकिक महापुरुषों के वज्र से कठोर तथा पुष्प से भी कोमल हृदयों को भला कौन जान सकता है।

१४–वासन्ती–कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः
घर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाण विष्किर मुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूलेकुलायद्रुमाः॥६॥

अन्वय–छायापस्किरमाण विष्कर मुखव्याकृष्ट कीटत्वच, कूजत्क्लान्तकपोत कुक्कुट कुलाः, कूले कुलायद्रुमाः कण्डूल द्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः घर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैः गोदावरीम् अर्चन्ति।

अनुवाद–छाया मे जीविका के लिए किरोदते हुए पक्षियों की चोचों से खींचकर निकाले गये हैं कीट जिनसे ऐसी छालों वाले, कूजते हुए और खेदयुक्त कबूतरों तथा मुर्गों के समूह हैं जिनपर ऐसे, तट पर स्थित, पक्षियों के घोसलों से युक्त-वृक्ष, हाथियों की कण्डू युक्त कपोलभित्तियों के घर्षण के कारण हिलने से समूह रूप में नीचे गिरने वाले और घाम के कारण शिथिल वृन्तों वाले अपने पुष्पों से गोदावरी को पूजते हैं।

१५–रामः–स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः
स्थाने स्थाने मुखर ककुभोझाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रमगिर सरिद्गर्त कान्तार मिश्राः
संदृश्यन्ते परि चितभुवो दण्डकारण्यभागाः॥१४॥

अन्वय–क्वचित् स्निग्धश्यामा. प्रपरतः भीषणाभोगरूक्षाः स्थाने-स्थाने निर्झराणा झाङकृतैः मुखरककुभ तीर्थाश्रमगिरि सरित्गर्तकान्तारमिश्राः परिचितभुवःएते दण्डकारण्यभागाः स दृश्यन्ते ।

अनुवाद–कही चिकने और श्यामल तथा दूसरी ओर भयङ्कर विस्तार के कारण रूखे, स्थान स्थान पर झरनो की झंकार से मुखरित दिशाओ वाले, तीर्थ. आश्रम, पर्वत, नदी, गड्ढे और दुगम मार्ग वाले तथा परिचित भूमि वाल दण्डकारण्य क प्रदेश दिखाई दे रहे हैं ।

६–शम्बूक–

निष्कूजस्तिमिता क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्वस्वनाः
स्वच्छ सुप्तगभारभोगभुजग श्वास प्रदीप्ताग्नयः ।
सीमान. प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वय
तष्यद्भि. प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेद इव पीयते ॥१६॥

अन्वय–सीमान क्वचित् निष्कूजस्तिमिता; क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्वस्वना स्वेच्छा सुप्तगभीर भोगभुजग-श्वास प्रदीप्ताग्नय प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसः यासु तृष्यद्भि प्रतिसूर्यकं अयम् अजगरस्वेदद्रव. पीयते ।

अनुवाद—इस भीषण वन म कहीं पूर्ण नीरवता है और कहीं हिंस्रपशुओ को प्रचड गर्जना सुनाई पड़ती है, कहीं स्वेच्छा पूर्वक साय हुए, गम्भीर फूत्कार करने वाले सर्पों के नि श्वासो से प्रज्वलित होकर आग लग गई है, कहीं गड्ढों मे थोडा सा पानी झिलमिला रहा है और कहीं प्यास के मारे विह्वल गिरगिट अजगर का पसीना पी रहें है ।

१७–राम –न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियोजन. ॥१८॥

अन्वय—यो जनो यस्य प्रियः किञ्चित् न कुर्वाणोऽपि सौख्यैः दुःखानि अपोहति, हितत् तस्य किमपि द्रव्यम्।

अनुवाद—जो मनुष्य जिसका प्यारा है, वह कुछ न करता हुआ भी सामीप्य मात्र से उत्पन्न सुखो के द्वारा दुःखो का नाश करता है, इसलिए वह उसका अनिर्वचनीय पदार्थ है।

२०. शम्बूकः-इह समदशकुन्ताक्रान्त वानीर वीरुत्
प्रसवसुरभिशीत स्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणाम श्याम जम्बूनिकुञ्ज
स्खलन मुखर भूरि स्रोतसोनिर्झरिण्यः ॥२०॥

अन्वय-इह समद शकुन्ता क्रान्त वानीरवीरुत् प्रसवसुरभिशीतरवर्झरिण्यः स्वच्छतोयाः फलभर परिणाम श्याम जम्बू निकुञ्जस्खलनमुखर भूरि स्रोतसः निर्झरिण्यः वहन्ति।

अनुवाद-यहाँ, मदवाले पक्षियों से आक्रान्तलताओ के पुष्पो से सुगन्धित शीतल तथा निर्मल जल वाली, फलो की राशि के कारण श्याम वर्ण वाले जामुन वृक्षो के कुञ्जों मे टकराकर गिरने से शब्दायमान प्रबल प्रवाह वाली पहाड़ी नदियाँ बहती हैं।

२१ राम—चिरोद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरस.
कुतश्चित्संवेगान्निहित इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुन.
पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव॥ २६॥

अन्वय—चिरोद्वेगारम्भी प्रसृतः तीव्रः विषरस इव, कुतश्चित् संवेगात् निहितः शल्यस्य शकल इव, हृन्मर्मणि रूढग्रन्थिः स्फुटितो व्रण इव, पुराभूतः शोकः नूतन इव पुनः मां विकलयति।

अनुवाद—बहुत अधिक दुख आज विष के समान मेरे हृदय में भर गया है। ऐसा लगता है मानों मेरे मन में लगे हुए काटे को किसी ने खूब जोर से पकड कर हिला दिया है। जो मेरे मन का शोक समय की दूरी से कुछ घट रहा था वह मानो फिर

हरा हो गया और मुझे व्याकुल बनाने लगा।

२२ शम्बूक—गुञ्जत्कुञ्जकुटीर कौशिक घटाघुत्कार वत्कीचक
स्तम्बाडम्बरमूकमौ कुलिकुल क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरि।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलता मुद्वेजिता कूजतै
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसा: ॥२६॥

अन्वय—गुञ्जत्कुञ्जकुटीर कौशिक घटा घुत्कारवत्कीचक स्तम्बा डम्बर मूकमौ कुलिकुल क्रौञ्चाभिध अय गिरि। एतस्मिन् प्रचलता प्रचला किनाम कूजितै उद्वेजिता कुम्भीनसा पुराण रोहिण तरुस्कन्धेषु उद्वेल्लन्ति।

अनुवाद—यह क्रौञ्च नामक पर्वत है। इसपर गुजायमान कुज कुटीरों म रहने वाले उल्लुओ के घूर शब्द मिश्रित बासो के गुच्छों के ऊचे शब्दो स भयभीत कौवे शब्द शून्य हैं। यहा पर चलते हुए मोरो के शब्दों से डरे हुए सर्प पुराने चन्दन के वृक्षों के स्कन्धों म इधर उधर रेंग रहे है।

२३ एतेते कुहरेषु गद्गद नग्दद्गोदावरी वारयो
मेघालम्बित मौलिनील शिखरा क्षोणीभृतो दाक्षिणा:।
अन्योऽन्यप्रतिघातसङ्कुल चलत्कल्लोल कोलाहलै
सत्तालास्तइमे गभीरपयस पुण्या सरित्सङ्गमा ॥ ३० ॥

अन्वय—कुहरेषु गद्गदनदद् गोदावरी वारयो मेघालम्बित मौलिनील शिखरा त एते दाक्षिणा क्षोणीभृत। अन्योन्य प्रतिघात सङकुल चलत्कल्लोलकोलाहलै उत्ताला त इमे गभीर पयस, पुण्या सरित्सङ्गमा।

अनुवाद—गुफाओं मे बहती हुई गोदावरी की धारायें यही हैं। दक्षिण के ये वही पर्वत शिखर हैं जिनपर लिपटे हुए बादल उ हे नीलिमा प्रदान कर रहे हैं। यही पर नदियों मे वे पवित्र सङ्गम है जिनका जल गहरा है और जो वेग से उठती गिरती हुई लहरो की भीषण ध्वनि से भयकर है।

२४. अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥१॥

अन्वय–गभीरत्वात् अनिर्भिन्नः अन्तर्गूढघनव्यथो रामस्य करुणो रसः पुटपाकप्रतीकाश. ।

अनुवाद–राम का करुण रस अर्थात् सीतावियोगजन्य शोक पुटपाक के समान है, जो गम्भीरता के कारण व्यक्त तो नहीं होता, किन्तु भीतर छिपी हुई गाढ़ वेदना से युक्त है ।

२५. परिपाण्डु दुर्बल कपोलसुन्दरं
दधती विलोलकवरीकमाननम ।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥४॥

अन्वय–परिपाण्डु दुर्बल कपोल सुन्दर विलोलकवरीकम् आनन दधती जानकी करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथा इव वनम् एति ।

अनुवाद–(गोदावरी के अगाध जल वाले जलाशय से निकल कर यह) अति पाण्डुवर्ण वाले और कृश कपोलों से सुन्दर तथा खुले हुए होने के कारण चचल केशविन्यास से युक्त मुख को धारण करती हुई, करुण रस की मूर्ति अथवा देहधारिणी वियोगवेदना-सी सीता वन मे प्रवेश करती है ।

२६. वासन्ती–त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।
इत्यादिभि. प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥२६॥

अन्वय– त्वजीवितम्, त्व मे द्वितीय हृदयम्, त्वम नयनयोः कौमुदी। त्वम् अगे अमृतम् असि, इत्यादिभिः प्रियशतैः मुग्धाम् अनुरुध्य ताम् एव-अथवा शान्तम्, अतः परेण किम् ?

अनुवाद—तुम मेरा जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरी आँखों में चाँदनी हो, तुम शरीर पर अमृत हो, इत्यादि सैकड़ों प्रिय वचनों से भोली सीता को अनुनय करके उन्हीं को अथवा बस, इसके आगे कहने से क्या फल है ?

२७. राम—त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे-

स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः ।

ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा

क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता ॥२८॥

अन्वय—त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः तस्याः ज्योत्स्नामयी इव मृदुबाल मृणालकल्पा अङ्गलतिका क्रव्याद्भिः नियतं विलुप्ता ।

अनुवाद—डरे हुए एक वर्षीय हरिण की तरह चञ्चल नेत्रों वाली और काँपते हुए गर्भ के भार से अलसित होने वाली सीता का ज्योत्स्ना से बने हुए की तरह, कोमल एवं नवीन मृणाल के तुल्य और लता सदृश शरीर मांसभोजी जन्तुओं द्वारा अवश्यमेव नष्ट हो गया होगा ।

२९. तमसा—पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।

शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥२९॥

अन्वय—तडागस्य पूरोत्पीडे परीवाहः प्रतिक्रिया (भवति), हृदयं च शोकक्षोभे प्रलापैः एव धार्यते ।

अनुवाद—सरोवर में पानी का आधिक्य होने पर परीवाह अर्थात् बाहर जल निकलने के लिए बना हुआ स्रोत-सा मार्ग ही प्रतिकार होता है । इसी तरह हृदय भी शोक से चंचल होने पर विलापों से ही रक्षित किया जाता है ।

३१. [illegible] न भिद्यते,

[illegible] न मुञ्चति चेतनाम् ।

व्यञ्जयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्,
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥३१॥

अन्वय—हृदय शोकोद्वेगाद् दलति द्विधा तु न भिद्यते, विकलः कायः मोह वहति चेतना न मुञ्चति। अन्तर्दाहः तनुं ज्वलयति भस्मसात् न करोति, मर्मच्छेदी विधिः प्रहरति जीवित न कृन्तति।

अनुवाद—हृदय शोक से विचलित होने के कारण विदीर्ण होता है, लेकिन दो टुकड़ो में विभक्त नहीं होता, शोक से विह्वल शरीर मोहधारण करता है, लेकिन चैतन्य को नही छोड़ता; अन्तःकरण का सताप शरीर को जलाता है, लेकिन भस्म नही करता, इसी तरह मर्मस्थल को विदारण करने वाला भाग्य प्रहार करता है, लेकिन जीवन को नष्ट नहीं करता है।

३० राम–हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं ध्वसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरल ज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ् मोहः स्थगयति कथं मंदभाग्यः करोमि ॥३८॥

अन्वय—हा हा देवि ! हृदय स्फुटति, देहबन्धो ध्वसते जगत् शून्य मन्ये, अन्तः अविरल ज्वाल ज्वलामि, सीदन् विधुरः अन्तरात्मा अन्धे तमसि मज्जति इव, मोहो विष्वक् स्थगयति, मन्दभाग्यः कथ करोमि।

अनुवाद—हा हा देवि, हृदय फट रहा है, देह का बन्धन शिथिल पड़ रहा है। ससार को शून्य प्रतीत कर रहा हू अविश्रान्त ज्वालाओंसे भीतर जल रहा हू अवसादयुक्त हुआ विकल अन्तःकरण गाढ़ अन्धकार में मानो डूब रहा है। चारों ओर से मूर्च्छा घेर रही है। मैं मन्दभाग्य वाला क्या करूँ !

३१ राम एको रस करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।

आवर्त बुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समस्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वय–एकः करुणः रस एव निमित्तभेदात् भिन्नः पृथक् पृथक् विवर्तान् श्रयन इव, यथा अम्भ आवर्त बुद्बुद तरङ्ग मयान् विकारान् श्रयतः तु तत् समस्त सलिलम् एव हि।

अनुवाद–एक करुण रस ही निमित्तभेद से भिन्न होता हुआ पृथक् पृथक् शृङ्गार आदि परिणामों को आश्रय देता है ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक ही जल भँवर, बुद्बुद और तरङ्ग रूप विकारों का आश्रय करता है पर वास्तव में वह सब जल ही है।

चतुर्थ अंक

३-अन्यवती सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्बन्धु
वियोग जानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रैरिव
सम्प्लवन्ते ॥ ८ ॥

अन्वय–मानुषाणां सन्तान वाहीन्यपि सम्बन्धिवियोग जानि दुःखानि प्रेयसि जन दृष्टे दुःसहानि (भूत्वा) स्रोतः सहस्रैः इव सम्प्लवन्ते

अनुवाद–मनुष्यों के अविच्छिन्न भाव से प्रवाहित होने वाले बन्धु वियोगजन्य दुःख अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का साक्षात्कार होने पर असह्य होकर असंख्य धाराओं के रूप में बहने लगते हैं।

१२ अरुन्धति शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ॥ ११ ॥

अन्वय–त्वं मम शिशुर्वा शिष्या वा यत् असि, तथा तिष्ठतु, त्वयि विशुद्धेः उत्कर्षस्तु मम भक्तिं द्रढयति। ननु शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु, जगतां वन्द्या असि, गुणिषु गुणाः पूजास्थानं, न च

लिग न च वय ।

अनुवाद–तुम मेरी बेटी हो या शिष्या हो, जो सम्बन्ध है वह वैसा ही रहे परन्तु तुझमे जो पवित्रता का आधिक्य है, वह मेरी भक्ति को दृढ करता है। तुममे बालभाव हो या स्त्रीभाव तुम संसार की वन्दनीया हो। गुणियों मे गुण ही पूजा के स्थान होते हैं; स्त्रीत्व, पुरुत्व या जटा कषाय वस्त्र आदि चिह्न विशेष और उस पूजा के स्थान नही होते हैं।

३४ अरुन्धती आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु
मा संशयो भूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं
विप्लुतार्थां वदन्ति ॥ १८ ॥

अन्वय—आविर्भूत ज्योतिषा ब्राह्मणाना ये व्याहारा: तेषु सशयो मा भूत। हि एषा वाचि भद्रा लक्ष्मी: निषक्ता एत विप्लुतार्थां वाच न वदन्ति।

अनुवाद–प्रकट हो गई है ब्रह्मज्योति जिनको ऐसे विप्रो के जो वचन हैं, उनमे तुम्हे सन्देह न होना चाहिए। इनकी वाणी मे कल्याणकारिणी सिद्धि नित्य सन्निहित रहती है। ये अयथार्थ वाणी को नही बोलते हैं।

३५ जनक चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोक पवित्र लाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठक
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः ॥२०॥

अन्वय—पृष्ठत अभित. चूडाचुम्बित कङ्कपत्र तूणीद्वय, भस्मस्तोक पवित्र लाञ्छनम् उर:, रौरवी त्वच धत्ते, मौर्व्या मेखलया नियन्त्रित माञ्जिष्ठक वास:, पाणौ कार्मुकम् अपर: पैप्पलो दण्ड: आस्त।

अनुवाद–कङ्कपत्र से युक्त पीठ के दोनों ओर चोटी को छूने वाले दो तरकशो को, थोडी सी भस्म से पवित्र चिह्न वाली छाती

को और रुरु नामक मृग के चमड़े को भी यह धारण कर रहा है। इसके वक्षस्थल के नीचे मौर्वी मेखला से बाँधी गई मजीठ को रंग वाली धोती, हाथ में धनु, रुद्राक्ष माला और पीपल का दण्ड भी है।

३६ वटव: पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीव: स भवति खुरा स्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि याम॥ ३६॥

अन्वय—पश्चात् विपुळ पुच्छ वहति, अजस्त्र धूनोति स दीर्घ ग्रीवो भवति, यस्य चत्वार एव खुरा: शष्पाणि अत्ति, आम्रमात्रान् शकृत्पिण्डकान् प्रकिरति, व्याख्यानैः किं? स पुन: दूर व्रजति, एहि एहि याम।

अनुवाद—वह शरीर के पीछे बड़ी पूँछ धारण करता है और उसे निरन्तर हिलाता रहता है। उसकी लम्बी गर्दन होती है और उसके चार ही खुर होते हैं। वह घास खाता है और आम के फलों के बराबर लीद के टुकड़ों को छोड़ता है। बहुत कहने से क्या? वह फिर दूर जा रहा है आओ आओ हम जाते हैं।

३७ लव: ज्याजिह्वया वलयितोत्कट कोटि दंष्ट्र
मुद्भूरिघोर घन घर्घर घोषमेतत्।
ग्रास प्रसक्तहसदन्तक वक्त्रयन्त्र
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्॥ ३६॥

अन्वय—ज्याजिह्वया वलयितोत्कट कोटिदंष्ट्रम् उद्भूरिघोरघनघर्घर घोषम् एतत् चाप ग्रासप्रसक्तहसदन्त कवक्त्रयन्त्रजृम्भा विडम्बि विकटोदरम् अस्तु।

अनुवाद—मौर्वीरूप जीभ से वेष्टित, उन्नतकोटि रूप दो दंष्ट्राओं से युक्त और असह्य भयङ्कर तथा घने घर्घर शब्दों वाला यह

धनुष, निगलने में तत्पर, हँसता हुआ यमराज के मुख रूप
यन्त्र की जम्हाई का अनुकरण करने वाला अतएव यह
भयङ्कर मध्यभाग वाला हो जाय ।

पञ्चम अङ्क

३८ सर्ग—

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मी कीर्तिं सूते दुहृदो निष्फलाति
शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीरा सूनृतांवाचमाहु ॥३०

अन्वय—कामं दुग्धे अलक्ष्मी विप्रकर्षति कीर्ति सूते दुहृदः निष्फलाति अतः धीरा सूनृता वाचं शुद्धा शान्ता मङ्गलाना मातरं धेनुम् आहु ।

अनुवाद—सत्य और प्रिय वाणी मनोरथ को पूर्ण करती है, दरिद्रता को हटाती है कीर्ति को उत्पन्न करती है और शत्रुओं को विनष्ट करती है । अतः सुधीगण सत्य और प्रिय वाणी को शुद्ध शान्त कल्याण दात्री एवं कामधेनु तुल्य कहते हैं ।

३६ लव वृद्धास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्तु किंवर्ण्यते ?
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते ।
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन् खरायोधने
यद्वाकौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जन ॥ ३४ ॥

अन्वय—ते वृद्धाः विचारणीय चरिताः न तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते ? सुन्दस्त्रीमथनेऽपि अकुण्ठयशसः ते लोके महान्तः हि खरायोधन यानि त्रीणि कुतोमुखानि पदानि अपि आसन् वा इन्द्रसूनुनिधने यत् कौशलं तत्र अपि जनः अभिज्ञः ।

अनुवाद—वे राम वृद्ध हैं । अतएव उनके चरित्र की आलोचना नहीं करनी चाहिए । सुन्द की स्त्री ताड़का को मारने में भी अप्रतिहत यशवाले वे लोक में श्रेष्ठ ही हैं । खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटे थे, अथवा बाली के मारने में जो निपुणता की थी उससे भी लोग परिचित है ।

१०—विद्याधर मणत्फणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकधनु-
ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम् ।
वितत्य किरतो शरानविरतं पुनः शूरयो
विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम् ॥१॥

अन्वय — मणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकध्वनदगुरुगुणाटनीकृत करालकोलाहल धनु वितत्य शरान अविरत किरतो शूरयो पुन विचित्र भुवनभीमम आयोधनम् अभिवर्तते ।

अनुवाद—झनझनाते हुए कङ्गना की भाँति शब्दायमान किंकिणियां वाले तथा मौर्वी एवं दोनों नोकों से भीषण कोलाहल करने वाले धनुष को फैलाकर लगातार बाण छोड़ते हुए दोनों वीरों का पुन आश्चर्यजनक तथा संसार के लिए भयोत्पादक युद्ध हो रहा है ।

म—८१ त्रातु लोकानिव परिणत कायवानस्त्रवेद
क्षात्रो धर्म श्रित इव तनु ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै ।
सामर्थ्यानामिव समुदय, सञ्चयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माण राशि ॥२॥

अन्वय—लोकान त्रातु परिणत कायवान् अस्त्रवेद इव, ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै तनु श्रित क्षात्रो धर्म इव, सामर्थ्याना समुदय इव, गुणानां सञ्चयो वा, जगत्पुण्य निर्माण राशि आविर्भूय स्थित इव ।

अनुवाद—लोकों की रक्षा करने के लिए धनुर्वेद मानो शरीरधारी हो गया है । वेदरूप निधि की रक्षा के लिए क्षात्र धर्म ने मानो शरीर धारण किया है । शक्तियों का मानो एक आधार म

मिलकर आविर्भाव हुआ है। यह गुणों का मानो समूह है। लोकों के धर्मानुष्ठानों का समूह प्रकट होकर मानो स्थित है।

४२ राम:— व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपिहेतु-
न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥१२॥

अन्वय—आन्तरः कोऽपि हेतुः पदार्थान् व्यतिषजति, प्रीतयः बहिरूपाधीन खलु न संश्रयन्ते। हि पतङ्गस्य उदये पुण्डरीकं विकसति, च हिमरश्मौ उद्गते चन्द्रकान्तो द्रवति।

अनुवाद—कोई आन्तरिक अनिर्वचनीय कारण ही पदार्थों या प्राणियों में प्रीति सयाग स्थापित करता है। प्रेम कभी वाह्य कारणों पर आश्रित नहीं होता। देखो न, सूर्य के उदय होने पर ही कमल खिलता है और चन्द्रमा के उदय होने पर ही चन्द्रकान्त मणि द्रवीभूत होती है।

४३ कुश— तथैव राम सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥३२॥

अन्वयः— तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियः अभवत्। तु हृदय एव परस्परम् प्रीतियोग जानाति।

अनुवाद—राम उसी तरह से सीता के प्राणों से भी अधिक प्रिय थे। परन्तु हृदय ही परस्पर का प्रेम सम्बन्ध जानता है।

४४ रामः—चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः,
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥३८॥

अन्वय —प्रवासे च चिरं ध्यात्वा निर्माय पुरतः निहित इव प्रियजनः आश्वासं न करोति (ददाति) न खलु । कलत्रे उपरते जगत् जीर्णारण्यं भवति हि, तदनु कुकूलानां राशौ हृदयं पच्यत इव ।

अनुवाद —प्रवास काल में भी दीर्घकाल तक निरन्तर ध्यान करके कल्पना द्वारा रचकर सामने स्थापित किया हुआ सा प्रियजन सान्त्वना नहीं देता है, यह बात नहीं है । अर्थात् सान्त्वना देता ही है । परन्तु पत्नी के देहान्त हो जाने पर संसार जीर्ण शीर्ण अरण्य की भाँति हो जाता है और उसके पश्चात् हृदय मानो तुषाग्नि के ढेर में जलने लगता है ।

सप्तम अंक

श्लोक —पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गंगेव च ।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥२१

अन्वय —माता इव गंगा इव च जगतः मङ्गल्या च मनोहरा च सा इयं कथा पाप्मभ्यः पुनाति, श्रेयांसि वर्धयति च । अभिनयैः विन्यस्तरूपां शब्दब्रह्मविदः प्राज्ञस्य कवेः परिणताम् इमां ताम् एतां वाणीं बुधाः परिभावयन्तु ।

अनुवाद —माता के समान तथा गंगा के समान संसार की मङ्गलकारिणी तथा रमणीया यह मनोहर प्रसिद्ध रामायण रूप कथा पापों से शुद्ध करती है और कल्याणों को बढ़ाती है । इस सुप्रसिद्ध कथारूप वाणी का जो विद्वान् कवि भवभूति द्वारा रूपान्तरित की गई है तथा जिसका रूप अभिनयों द्वारा प्रदर्शित किया गया है, पण्डितगण चिन्तन करें ।

—

परिशिष्ट (अ)

भवभूति–स्तुति–पद्यावलि

(१) स्पष्टभावरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता ।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना ॥
(धनपाल–तिलक मंजरी १।३०)

(२) भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलित तरंगिणी ।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ॥
(क्षेमेन्द्र–सुवृत्ति (तिलक) ३।३३)

(३) भवभूते सम्बन्धाद्भूधर भूरेव भारतीभाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥
(गोवर्धनाचार्य-आर्यासप्तशती १।३६)

(४) सुकविद्वितय मन्ये निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिःशुकश्चाय वाल्मीकिस्त्रितयोऽनयोः ॥
(भोज प्रबन्ध ३।१९१)

(५) उत्तरे रामचरिते भवभूति विशिष्यते । (विक्रमार्क)

(६) रत्नावली पूर्वकमन्यदास्तामसीम भोग्यस्य वचोमयस्य ।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परविभूषाभवभूतिरेव ॥
(जल्हण-सूक्तिमुक्तावलि)

(७) भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया ।
मुरारि पदचिन्तायामिदमाधीयते मनः ॥
(जल्हण-सूक्तिमुक्तावलि)

(८) मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यो सारस्वतेवर्त्मनिसार्थवाहः ।
वाचं पताकामिवयस्य दृष्ट्वाजनः कवीनामनुपृष्ठमेति ॥
(उदयसुन्दरी चम्पू)

(९) भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इवस्फुरन्ति ।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ॥
(गौडवहो वाक्पतिराज)

(१०) कारुण्य भवभूतिरेव तनुते । (अज्ञात)

(११) जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा।
ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्या हसत स्मस्तनावपि ॥
(अज्ञात)

(१२) बभूव वल्मीकि भव कवि पुरातत प्रपेदे भुवि भर्तृ मेण्ठताम्।
स्थित पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रतिराजशेखर
(बालरामायण-राज)

(१३) सुबन्धौ भक्तिर्न क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षी पुत्रे हरति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्।
विशुद्धोक्ति शूर प्रकृतिमधुरा भारविगिर:
तथाप्यन्तर्मोद कमपि भवभूतिर्वितनुते ॥
(सदुक्ति कर्णामृत)

(१४) भव्या यदि विभूति स्वतात कामयसेतदा ।
भवभूतिपदे चित्तमविलम्ब निवेशय॥ (अज्ञात)

परिशिष्ट (ब)

भवभूति के नाम पर संग्रह-ग्रंथों में उद्धृत पद्यः—

(१) निरवद्यानि पद्यानि यद्यनाद्यस्य का क्षति।
भिक्षुक क्षाविनिक्षिप्त: किमिक्षुर्नीरसो भवेत्।।
(शारंगधर पद्धति)

(२) दैवाद्यपि तुल्यऽभूद्भूतेशस्य परिग्रह ।
तथापि किं कपालानि तुला यति कलानिधे.
(शारंग० प०)

(३) अलिपटैरनुयातां सहृदय हृदयज्वरं विलम्पन्तीम्।
मृगमदपरिमल लहरीं समीर पामरपुरे किरसि ।।
(शारंगधर पद्धति)

(४) चूडापीडनिबद्धवासुकिफणां फूत्कारनिर्यद्विषा—
ज्वालाजृम्भितमत्स्यकच्छपवधू लीढेन्दुलेखामृतम्।

श्रव्याद्व स्मरसूदनस्य मदनक्राड कथाकपण—
श्च्योतन्नामसरित्सरोपगिरिजादृष्ट जटामगलम ॥

39285

(सदुक्ति कर्णामृत)

(५) गाढग्रन्थिप्रफुल्लदगल विफलफणापीठनिर्यद्विषाग्नि—
ज्वालानिष्नप्तचन्द्रद्रवन्मृतरमप्रोषित प्रेतभावा ।
उज्जृम्भा बभ्रुनेत्र तिमसक्त सूक्तप्रणयालोकनन्दप
पन्तु त्वा नागनालर्मायतशवशिर श्रणयो भैरवस्य ॥

(सदुक्ति०)

(६) वैकुण्ठस्य कर कमङ्कनिहितं स्रष्टु कपालं करे
प्रत्यंग च विभूषण विरचित नार्कीस्मा कीकसै ।
भस्म स्थाणुरजगमस्य जगत शुभ्र तनौ बिभ्रत
कल्पान्तेषु कपालिनो विजयते रौद्र कपालनतम् ॥

(सदुक्ति०)

(७) का तपस्वी गतोऽवस्थामिति स्मेराविवस्तनौ ।
वन्दे गौरीधनाश्लेष भवभूति सितानतौ ॥

(सदुक्ति०)

(८) शौर्यं शत्रु कुलक्षयावधि यशो ब्रह्माण्डखण्डावधि
त्याग सप्तसमुद्रमुद्रित महीनिर्व्याजदानावधि ।
वीर्यंवत्तु गिरा न तत्पथि ननु व्यक्त क्रि तत्कर्मभि
सत्य ब्रह्मतपोनिधेर्भगवत किं किं न लोकोत्तरम् ॥

(सदुक्ति०)

(९) नि ससार करधान विदीर्णध्वान्तदन्तरुधिरारुणमूर्ति ।
केसरीव कटकाद्रुदयाद्रेरङ्कलीनहरिणो हरिणाङ्क ॥

(सदुक्ति०)

(१०) उपसि गुरुसमक्ष लज्जमाना मृगाक्षी
रतिरुतमनुकर्तु राजकीरे प्रवृत्ते ।

तिरयति शिशलीलानर्तनच्छद्मताल
प्रचलवलयमाला स्फालकोलाहलेन ।। (सदुक्ति०)

(११) भुवां धर्मारम्भे पवनचलितं तापऽतये
पटच्छत्राकारं वहति गगनं धूलि पटलम् ।
अमी मन्दागाणां दववहन संदोहितधियो
न ढौकन्ते पातुं झटिति मकरन्दं मधुलिहः ॥
(सदुक्ति कर्णामृत)

(१२) लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां
नवकमल पलालस्रस्तरे सोपधाने ।
परिहरति सुषप्तं हालिकद्वन्द्वमारात्
स्तनकलशमहोष्मावद्धरेखस्तुषारः ॥ (सदुक्ति०)

(१३) किंचन्द्रमा. प्रत्युपकारलिप्सया
करोति गोभिः कुमुदावबोधनम् ।
स्वभाव एवोन्नतचेतसा ---
परोपकारव्यसनं हि जीवितम् ।।
(रसिक जीवन गदाधरभट्ट)

परिशिष्ट (स)

सहायक ग्रन्थ सूची

[प्रस्तुत-पुस्तक के प्रणयन में जिनकी सामग्री का सहारा लिया गया है ।]

१ इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स–एडिनबर्ग, १९५५
२ ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–डा० कृष्णमाचारी, मद्रास, १६३७
३ ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—डा० मैक्डानल—मुंशीराम मनोहरलाल—दिल्ली, १९५८
४ ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—डा० दासगुप्ता और डा० एस० के० डे–कलकत्ता, १६४७

५ संस्कृत साहित्य का इतिहास—प्रो० बलदेव उपाध्याय, चौ० सं० पु० बनारस १९५९
६ संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—प्रो० चन्द्रशेखर पाण्डेय, कानपुर
७ संस्कृत ड्रामा—डा० ए० बी० कीथ, आक्सफोर्ड १९२४
८ हमारी नाट्यपरम्परा—श्रीकृष्णदास, प्रयाग १९५६
९ मालतीमाधवम्—नि० सा० प्रे०, बम्बई
१० महावीर चरितम्—रामचन्द्र मिश्र, चौ० सं० पु० बनारस
११ ,, —डा० टोडरमल
१२ उत्तर रामचरितम्—डा० पी० वी० काणे, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
१३ ,, —आनन्द स्वरूप एम० ए० ,, ,,
१४ ,, —पं० तारणीश झा, रामनारायण लाल इलाहाबाद
१५ ,, डा० बेलवलकर, हार्वर्डयूनीवर्सिटी प्रेस
१६ ,, प्रिन्सिपल शारदारंजनरे
१७ ,, —पं० रूपराम शर्मा, चौ० सं० पु० बनारस
१८ संस्कृत ड्रामा—प्रो० आर० वि० जागीरदार, धारवार
१९ ,, —प्रो० के० पी० कुलकर्णी
२० दि थियेटर आफ हिन्दूज—विलसन, कलकत्ता १९५५
२१ दि क्लासिकल एज—भारतीय विद्याभवन बम्बई १९५४
२२ दि इण्डियन थियेटर—डा० चन्द्रभान गुप्त—मोतीलाल बनारसीदास बनारस १९५४
२३ कालिदास और भवभूति—द्विजेन्द्रलाल राय
२४ भवभूति—हिज लाइफ एन्ड लिटरेचर—प्रो० एस० वि० दीक्षित, बेलगाव
२५ मालतीमाधव. सार आणि विचार—लेले

